प्रीतिरसावतार महाभावनिमग्न
श्रीराधा बाबा

(प्रथम भाग)

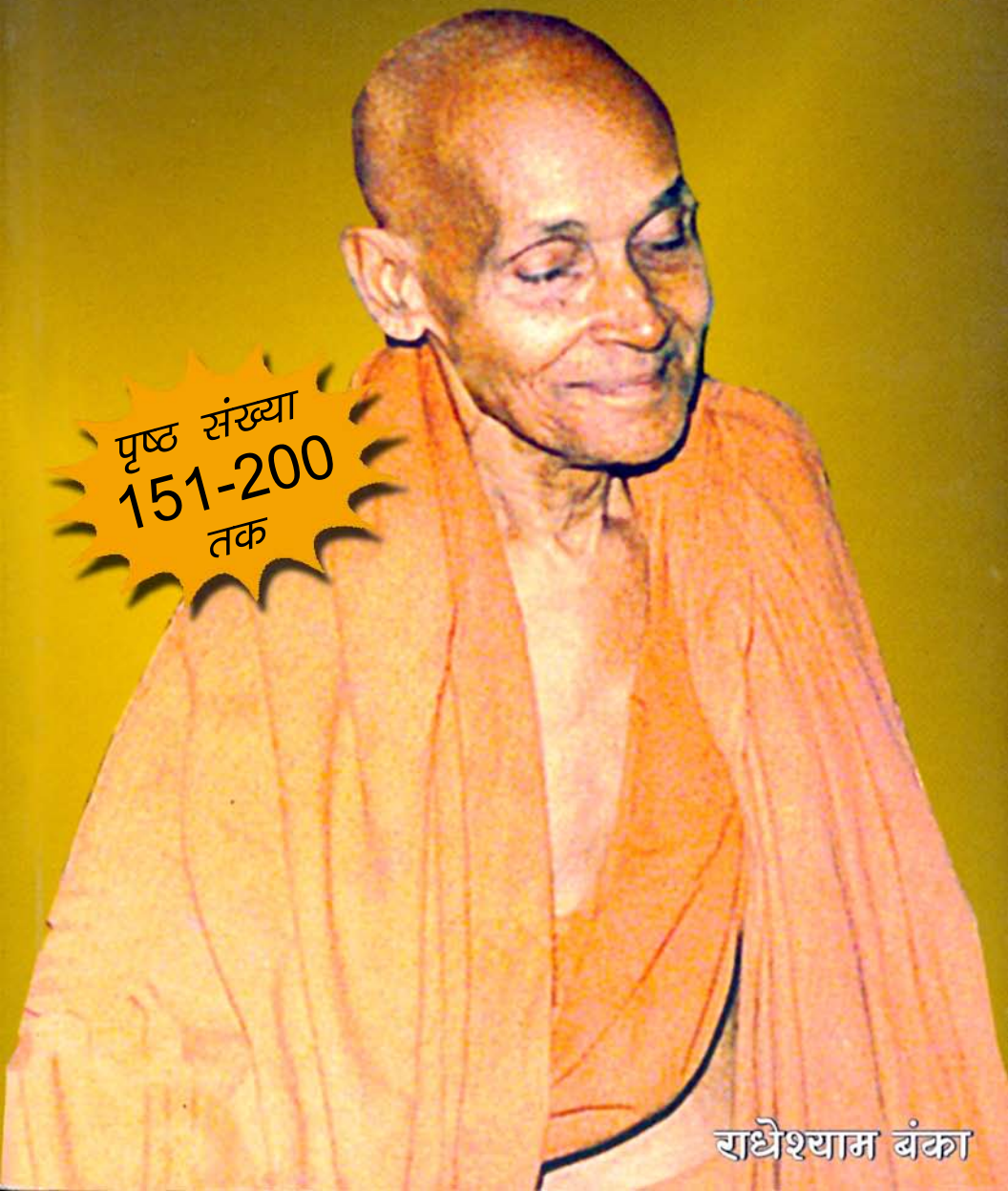

पृष्ठ संख्या
151-200
तक

राधेश्याम बंका

तब मैंने आँखोंको मूँद करके कुछ समयके लिये भगवान श्रीकृष्णका स्मरण किया। इसके बाद मैं दीवालकी ओर मुँह करके बैठ गया। फिर दीवालका सहारा लेकर खड़ा हो गया। धीरे-धीरे खड़े होनेके बाद मैं दीवालका सहारा लिये-लिये धीरे-धीरे दरवाजेकी ओर सरकने लगा। धीरे-धीरे चलकर मैं दरवाजेके पास आ गया। वहाँ चार-पाँच फीट लम्बा एक दण्ड रखा था। उस दण्डको लेकर उसके सहारे कमरेके बाहर आ गया और क्रमशः टिबड़ीकी ओर बढ़ने लगा। पहले तो मैं सरकता-सा चल रहा था, अब मेरी चालमें थोड़ी गति आ गयी। श्रीहीरालालजी यह सब चकित नेत्रोंसे देख रहे थे। जो स्वामीजी उठ भी नहीं सकते थे, वे ही अब चलकर टिबड़ीपर जा रहे हैं। मेरे पीछे-पीछे वे भी आये। मैं उस दण्डके सहारे चलते-चलते टिबड़ीपर पहुँच गया। ज्यों ही मैं श्रीसेठजीके पास पहुँचा, त्यों ही धम्मसे उस रेतीली भूमिपर गिर पड़ा। वहाँतक पहुँचनेके संकल्पको भगवानने पूरा कर दिया था। श्रीसेठजीको तथा अन्योंको भी मुझे वहाँ देखकर और चलकर आया हुआ जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ। टिबड़ीसे निवास स्थानपर वापस तो स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज अपने कन्धेपर बैठा कर ले आये।

उस गठिया रोगसे मैं अत्यधिक परेशान था। टिबड़ीपर जानेवाली घटना जिस दिन हुई, उसके बाद भी पीड़ा बढ़ती ही जा रही थी। दर्दके मारे नींद नहीं आती थी। मुझे लगा कि अब सहन करनेकी शक्ति शून्य-सी होती जा रही है। रात्रिकी बात है। उस असह्य पीड़ासे विकल होकर मैंने भगवान श्रीकृष्णसे कहा— मैं यह नहीं कहता कि आप मेरा रोग दूर कर दें। रोगके रूपमें भी आप ही हैं, पर इतना निवेदन तो अवश्य है कि जितनी मात्रामें रोग देते हैं और रोगका दुःख देते हैं, उसी अनुपातमें उस दुःखको सहन करनेकी शक्ति भी दें।

मेरे इतना कहनेपर मुझे लगा कि उनके नेत्र सजल हो उठे हैं तथा मुझसे कह रहे हैं— सचमुच, क्या तुम मुझे इतना निष्ठुर इतना

बह चले और उनसे कहने लगा— मुझसे बढ़कर अधम और कौन होगा, जो अपने शरीरके सुखके लिये आपसे प्रार्थना करता है! मुझे कुछ नहीं चाहिये। मेरी नीचताकी सीमा नहीं।

इन भावोंके प्रवाहमें मेरा मन बह चला। थोड़ी देर बाद मुझे नींद आ गयी। आज बत्तीस-तैंतीस दिन बाद नींद आ पायी थी। दो-तीन घण्टे गहरी नींदमें सोया। जगकर देखता हूँ कि विस्मयकारी परिवर्तन हो गया है। पीड़ा सोलह आनेमें चौदह आने समाप्त हो गयी है तथा सूजन भी अस्सी प्रतिशत समाप्त हो गयी है। उन कृपालुकी कृपालुताकी सीमा नहीं। उनकी कृपाका द्वार जैसे मेरे लिये खुला था और खुला है, उसी प्रकार सभीके लिये उन्मुक्त रूपसे खुला हुआ है। जिस प्रकार वे गठिया रोगको ठीक कर सकते हैं, उसी प्रकार कोई भी कार्य सम्पन्न कर देना उन सर्व-समर्थके लिये एक क्षुद्र-सी बात है। तभीसे रोगके लिये और रोग-जनित कष्टके लिये मेरा दृष्टिकोण ही दूसरा हो गया है। मैं कितना ही बताऊँ, पर लोग अनुमान लगा नहीं सकते, परन्तु यह सच है कि रोगके आने अथवा जानेके सम्बन्धमें मेरे मनमें कोई संकल्प उत्थित होता ही नहीं।

* * * * *

भगवान द्वारा सँभाल

सर्वव्यापी भगवान सर्वज्ञ हैं और परम सुहृद हैं। वे सर्वसमर्थ भगवान अपने आश्रित जनोंकी हर प्रकारसे सँभाल करते हैं। श्रीसेठजीसे एक बार जो पारस्परिक संलाप हुआ, उसका उल्लेख करके बाबाने अपनी आपबीती घटना सुनायी कि किस प्रकार निज-जन-वत्सल प्रभुने विषम क्षणोंमें मुझे सँभाला। बाबाकी ही वाणीमें वह विवरण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है।

कर्मठ और ज्ञानी तो नहीं, पर भक्त अवश्य ही भगवत्कृपासे परम दिव्य, परम चिन्मय भगवदीय रसका आस्वादन कर पाता है। भक्तका बल है भगवानकी परम समर्थ कृपापर विश्वास। संतों-भक्तोंकी ऐसी मान्यता है कि भगवानमें एक बड़ी दुर्बलता है कि वे अपने आश्रितकी आशा कभी नहीं तोड़ते। भक्त भगवानकी इस दुर्बलताका लाभ उठा लेता है। वैचारिक

दृष्टिसे जब मेरा संक्रमण-काल था, जब अद्वैत-सिद्धान्तकी कट्टरता अपनी विदाई ले रही थी, उस समय यही विश्वास मेरे मनमें जग रहा था। भगवानकी अहैतुकी कृपापर आस्था मनमें हिलोरें ले रही थी। सन् १९३७ या ३८ की बात है। मैं ऋषिकेश (स्वर्गाश्रम) में श्रीगंगाजीके किनारे बैठा था। स्वयं ही स्वयंमें विलीन था। अपने ध्यानमें संलग्न था। पास ही सेठ श्रीजयदयालजी गोयन्दका बैठे हुए संध्या कर रहे थे। शाम होनेवाली थी। अपनी संध्यासे निवृत्त होकर श्रीसेठजी मेरे पास आकर खड़े हो गये। उनका मेरे प्रति बड़ा प्यार था। वे प्यारमें भरकर बोले— कहिये स्वामीजी! आपके प्रति क्या कहूँ, क्या निवेदन करूँ?

मैंने सहज भावसे विनम्रतापूर्वक कहा— इस समय आपके मनमें जो स्फुरित हो रहा हो, आप वही कहें।

श्रीसेठजीने पूछा— क्या कह दूँ?

मैंने कहा— आप कहें, अवश्य कहें और वही कहें।

'क्या कह दूँ' यह बात श्रीसेठजीने कभी शब्द बदलकर, कभी स्वर (टोन) बदलकर कई बार कही और मैं हर बार यही कहता कि आप अवश्य वही बात कहें। फिर वे कहने लगे— भगवान बड़े कृपा-परवश हैं। वे इतने करुणामय हैं कि यदि कोई व्यक्ति ईमानदारीसे भगवानके शरणापन्न हो जाये, भगवानपर सर्वथा निर्भर हो जाये तो भगवान उसकी सारी कामना पूर्ण कर देते है।

श्रीसेठजीके मुखसे यह बात सुनकर मुझे बड़ा विस्मय हुआ। इन दिनों मैं जिस भावनामें लहरा रहा था, मेरी जो अनुभूति थी, श्रीसेठजीने उसको ज्यों-की-त्यों वाणी प्रदान कर दी। श्रीसेठजी यदि ऐसा नहीं कहते तो भी मेरा विश्वास डिगनेवाला नहीं था, क्यों कि यह तो मेरा अनुभूत सत्य था, पर श्रीसेठजीके कहनेसे उस अनुभूत सत्यकी अत्यधिक परिपुष्टि हो गयी।

भगवानकी कृपा-शक्ति सभी नियमोंसे सर्वथा परे है। कोई भी नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता कि कब और कैसे वह कृपा किसपर ढरेगी। जो भगवानके आश्रित हो जाता है, भगवान उसकी सँभाल करते हैं और करते हैं सर्वथा अचिन्त्य रीतिसे। मेरे जीवनकी कई घटनाएँ हैं, जो इस तथ्यके पक्षमें पुष्ट प्रमाण हैं।

एक प्रसंग सुनाता हूँ–

यह प्रसंग भी सम्भवतः १९३७ या ३८ का ही है। मैं कलकत्तासे चूरू जा रहा था। बीचमें मैं बिहारके गया स्टेशनपर रुक गया। कहाँ रुकना और कब पुनः यात्रारम्भ करना, यह निश्चित था। इस कार्यक्रमके अनुसार कानपुर तार दे दिया गया था कि मैं अमुक दिनांकको अमुक ट्रेनसे इतने बजे पहुँच रहा हूँ, जिससे मेरे शौच-स्नान-भिक्षाकी व्यवस्था रहे। मेरे पास रेल टिकट कलकत्तेसे चूरूतककी थी। मैं गया स्टेशनपर आया। मुझे विदाई देने राजासाहब श्रीकृष्णेश्वरप्रसादजी भी आये। वे लगभग दो-अढ़ाई घंटे मेरे पास रहे। अब रातके लगभग बारह बज रहे थे। मैंने कहा– आप जायें। जब ट्रेन आयेगी, तब मैं चढ़ जाऊँगा। कबतक आप खड़े रहेंगे। इसके अलावा एक बात और भी है। यदि आप चले जायेंगे तो मैं कम्बल बिछाकर कुछ लेट भी लूँगा। आपके रहते मैं वह भी नहीं कर पाऊँगा।

मेरे आग्रह करनेपर राजा साहब चले गये। मेरे सामनेसे चार ट्रेनें आयीं और चलीं गयीं, पर ट्रेनमें भीड़ इतनी थी कि डब्बेमें घुसना भी सम्भव नहीं। व्यवहारकी अभद्रता मेरे द्वारा सम्भव नहीं थी और भीड़की अधिकता देखकर कोई मुझे चढ़ने नहीं देता था। मैं सोच रहा था उन कानपुरवालोंके लिये, जो मुझको लेने स्टेशनपर आयेंगे तथा मुझको न पाकर कितना परेशान होंगे। रातके दो बज गये थे। मैं स्टेशनके प्लेटफार्मपर एक बेंचपर बैठा था। तभी एक युवक मेरे सामने आकर खड़ा हो गया, एकदम गौरवर्ण और खूब हृष्टपुष्ट। मैं तो उसे पहचान गया। उसका नाम था विजय। मेरे साथ पढ़ता था। मैं उसे विजय भइया कहा करता था। वह फुटबालका बहुत उत्कृष्ट खिलाड़ी था। फुलबैककी पोजीशनसे वह खेला करता था। फुटबालके कारण वह विख्यात था। मैं भी फुटबालका खिलाड़ी था। सेंटर फारवर्डकी पोजीशनसे खेला करता था। मेरी उससे बड़ी मैत्री थी। वह सूट पहने था। मैं तो उसे पहचान गया और उसको देखकर मैंने अपनी आँखें नीची कर ली, नीची इसलिये कर ली कि क्यों अपने पुराने मित्रोंसे मिलूँ और क्यों अपने पुरातन सम्पर्कको पुनर्जीवित बनाऊँ। बादमें उसकी बातोंसे ही पता चला कि वह सी.आई.डी. का इंस्पेक्टर बन गया है तथा किसी सरकारी कामसे वह स्टेशनपर नियुक्त है। यह भी कालका कैसा प्रवाह है कि दो साथियोंमेंसे

एक संन्यासी बन गया और एक सरकारी नौकरीमें चला गया।

सूट पहने विजय दूर खड़ा होकर एकटक मेरी ओर देखने लगा। मेरेपर अपनी दृष्टि गड़ाकर वह मन-ही-मन तर्क कर रहा था कि क्या यह वही मेरा मित्र चक्रधर मिश्र है। क्रमशः उसका संदेह दूर होने लगा तथा उसने निश्चित कर लिया कि पहलेका चक्रधर मिश्र ही यह संन्यासी है। उसने मेरे प्रति कुछ कहा। मैंने अपनी नजर ऊपर उठायी। आँखोंके चार होते ही उसके निश्चयकी परिपुष्टि हो गयी। फिर वह विजय तो वही 'तू' की भाषामें बात करने लगा तथा उसने जिज्ञासा व्यक्त की– यह कैसा वेष?

मैंने कहा– हाँ, विजय भइया! तुम्हारा वह भइया अब संन्यासी हो गया है।

उसने तुरन्त पूछा– कुछ भोजन किया है कि नहीं?

मैंने कहा– मेरे पाससे अभी राजा साहब गये हैं। मुझको स्टेशनपर छोड़कर गये हैं। मेरी भिक्षा उनके यहाँ हो चुकी है।

फिर विजयने पूछा– यहाँ कैसे बैठे हैं?

मैंने सब बात बता दी। विजयने कहा– अब ट्रेनमें स्थानकी व्यवस्था हो जायेगी।

उससे बड़ी देरतक बातें होती रहीं। इसी बातके बीच पता चला कि वह सी.आई.डी. इंस्पेक्टर हो गया है। ट्रेनके आनेपर उसने पूरी एक बर्थकी व्यवस्था कर दी और मैंने आरामसे कानपुरतककी यात्रा की। अब आप ही विचार करें कि उस विजयके रूपमें भगवदीय कृपा ही तो सक्रिय हुई थी, जिसने उस निराशा पूर्ण परिस्थितिकी सारी बात सुन्दर ढंगसे बना दी। मैं कानपुर पहुँचा। जो लेने आये थे, वे एक मिलके मैनेजर थे। तारमें जिस ट्रेनका संकेत था, वह ट्रेन उन्होंने देखी, उसके बाद उन्होंने दो-तीन ट्रेनें और देखी, पर मैं होता, तब न मैं मिलता। हर बार वे परेशान होकर लौट जाते।

मैं जिस ट्रेनमें चढ़ा था, वह ट्रेन जब कानपुर पहुँची तो मैं ट्रेनसे उतरकर एक किनारे खड़ा हो गया। वे मैनेजर न मुझको पहचानते थे और न मैं उनको पहचानता था। मुझको संन्यासी देखकर वे मेरे पास आये तथा पूछा– तारसे सूचना मिली कि मेरे पास एक संन्यासी आनेवाले हैं,

उनका अमुक नाम है। क्या आप ही हैं?

मैंने विनम्र भाषामें कहा— यह नाम तो मेरा ही है।

फिर उन्होंने कहा— कहिये, आपकी क्या सेवा करूँ। मैं तो कई बार आकर लौट चुका हूँ। आपकी सेवामें कार हाजिर है।

मैंने कहा— पहले तो आप गंगा तटपर ले चलें। वहाँ शौच-स्नानसे निवृत्त होना चाहता हूँ।

वे मुझे कारपर चढ़ाकर गंगाजी ले गये। नावसे गंगाजी पार की। शौचसे निवृत्त होकर स्नान करके फिर उनके वासस्थान गया। अब पुनः विचार करें कि तारके अनुसार तो मैं कानपुर पहुँचा नहीं, बल्कि उसके बाद भी एक-दो ट्रेन छोड़ चुका था। उसके बाद भी मुझको परेशानीसे बचा लेनेके लिये उस भगवत्कृपाने उन मैनेजर साहबके अन्दर संत-सेवाकी भावना जागृत कर दी तथा वे स्टेशनपर आये। भगवत्कृपा जितनी सँभाल करती है, उतनी मानवी शक्ति नहीं कर सकती।

* * * * *

बाँकुड़ा में भावमयी स्थिति

श्रीसेठजीका व्यापार-व्यवसाय बाँकुड़ामें था, जो बंगाल प्रदेशका एक नगर है। श्रीगीताजीकी टीकाके लेखनके कार्यसे बाबाको श्रीसेठजीके साथ-साथ रहना पड़ता था, अतः समय-समयपर उनके साथ बाँकुड़ा जाना पड़ता था। बाँकुड़ामें रहते समय बाबाकी जो भावमयी स्थिति थी, उसका वर्णन बाबाने एक बार एक समीप विराजित श्रेष्ठ संतके समक्ष स्वयं किया था। भगवत्प्रेम और भगवत्कृपाकी महिमाका वर्णन करते हुए बाबाने उनसे कहा था—

जिस व्यक्तिपर भगवानकी कृपा ढल जाती है और जिसको भगवानका साक्षात्कार हो जाता है, उसकी स्थिति और अनुभूति कुछ विचित्र ही होती है। उसे न भूखका ध्यान रहता है और न प्यास। न निद्रा सुहाती है और न जागरण। उसमें न कोई जिज्ञासा रहती है और न कोई प्रश्न ही। उसकी दृष्टि में न भूत रहता है और न भविष्य। बस, एक चाह उसके हृदयमें उमड़ती रहती है कि नीलसुन्दरको पकड़कर अपनी छातीसे चिपका लूँ।

मैं अपनी एक स्थितिकी बात बतलाता हूँ। गीताप्रेससे श्रीमद्भगवद्गीताकी एक टीका प्रकाशित है। इसका नाम 'गीता तत्त्व विवेचनी' है। सन् १९३९ के आरम्भिक मासकी बात है। गीता तत्त्व विवेचनीके प्रणयनका कार्य पूर्णताकी ओर था। उस समय मैं श्रीसेठजीके साथ बाँकुड़ामें था। मेरे जिम्मे कार्य यह था कि श्रीमद्भगवद्गीताके एक श्लोकपर जिन-जिन आचार्योंने जो-जो कहा है, उसका पठन और मनन करना और फिर अपने चिन्तन-सारांशको पारस्परिक विचार-विनिमयके समय बतलाना तथा इस गोष्ठीमें विचार-मन्थनके उपरान्त जो निर्णीत हो, उसको लिपिबद्ध करना। इस सारे निर्णीत चिन्तनको स्वच्छ और सुन्दर लेखमें लिखकर श्रीसेठजीको मैं दे देता था, जिससे छपनेके लिये गीताप्रेस भेज दिया जा सके। यह सारा कार्य दिनमें होता था।

सूर्यास्तके बाद मैं छतपर चला जाता था। यह एक कारखानेकी छत थी। छत बहुत बड़ी थी। उस छतपर मैं टहलता था तथा अपनी मस्तीमें गुनगुनाता-गाता रहता था। मुझे पता नहीं था कि नीचे मजदूर लोग मेरी गुनगुनाहटको सुन रहे हैं। यह तो बादमें पता चला कि वे मजदूर चुपचाप सुना करते थे। कोई छतपर आता नहीं था। उनको इस बातका भय रहता था कि छतपर जानेसे इस गुनगुनाहटका प्रवाह बन्द हो जायेगा। रातके लगभग आठ-नौ बजेतक यह गुनगुनाहट चलती रहती थी और आँखोंसे आँसू झरझर बहते रहते थे। मैं उनको रोकना चाहता था, पर रोक सकना संभव नहीं हो पाता था। फिर रातको ध्यान करनेके लिये बैठता। ध्यानकी प्रगाढ़तामें समयकी सुधि नहीं रहती। रातमें कठिनतासे दो-तीन घण्टे नींद आ पाती थी। फिर सुबह मैं उठता। मेरे जिम्मे जो काम था, उसको करना आवश्यक था। ग्रन्थोंमें आचार्योंके विचारोंको देखना और फिर गोष्ठीके निर्णयको स्वच्छ लेखमें लिखना, यह सब करना पड़ता था, किन्तु यह काम बड़ी कठिनाईसे हो पाता था। मनको पढ़ने-लिखनेके काममें जबरदस्ती लगाना होता था।

जब जीवन भगवत्कृपासे संसिक्त हो जाता है, उस समय कृपा-स्नात व्यक्तिका जीवन क्या होता है, उसकी कल्पना जगतके लोग कर ही नहीं सकते। श्रीनारायण स्वामीका एक प्रसिद्ध पद है 'जाहि लगन लगी घनश्याम की'। उस पदमें वर्णित स्थितिकी एक-एक बात पूर्णतः यथार्थ है।

क्षेत्र-संन्यास का नवीन अर्थ

सन् १९३९ ई. के अप्रैल मासमें 'गीता तत्त्व विवेचनी' के लिखनेका कार्य पूर्ण हो चुका था। इस लेखन-कार्यकी सम्पन्नता बाँकुड़ामें हुई थी, जो पश्चिमी बंगालका एक नगर है। उस समय श्रीसेठजी तथा बाबा तो बाँकुड़ामें थे ही, बाबूजी भी वहीं थे। 'गीता तत्त्व विवेचनी'के कार्यके सम्पन्न हो जानेके बाद प्रश्न यह था कि बाबा अब कहाँ रहें। इसके बारेमें अन्तिम निर्णय तो बाबाको ही लेना था, पर श्रीसेठजीकी चाह थी कि अटकसे कटकतक तथा काश्मीरसे कन्याकुमारीतक अर्थात् सम्पूर्ण भारतमें श्रीमद्भगवद्गीताके प्रचारके लिये बाबा मेरे साथ रहें। बाबाकी स्मरण-शक्ति, विषय-प्रवेश, तत्त्व-बोध, वक्तृत्व-क्षमता, उत्तर-पटुता, प्रतिपादन-शैली, आध्यात्मिक स्थिति, साधु-जीवन आदिको देखते हुए श्रीसेठजीके द्वारा ऐसा सोचा जाना उचित ही था। श्रीसेठजी तो बाबाके बारेमें इस प्रकार सोच हीं रहे थे और बाबा भी श्रीसेठजीकी ब्राह्मी-स्थितिपर विमुग्ध थे। बाबाकी यह मान्यता थी कि ज्ञानकी चतुर्थ भूमिकापर श्रीसेठजीकी स्थिति नित्य बनी रहती है। गुणग्राही बाबाका भी श्रीसेठजी जैसे संतके प्रति आकृष्ट रहना स्वाभाविक था।

इधर तो श्रीसेठजी और बाबा, दोनों एक दूसरेके प्रति आकृष्ट होकर इस प्रकार विचार कर रहे थे, उधर २६ या २७ या २८ अप्रैल १९३९ को एक विशेष बात घटित हो गयी। बाबा अपने उपासना-कक्षमें बैठे हुए थे। बाबाके सामने अपने उपास्यका चित्रात्मक श्रीविग्रह विराजित था वह चित्र, जिसमें भगवान श्रीकृष्ण यमुना-तटपर अकेले खड़े हुए हैं, खड़े-खड़े वंशी-वादन कर रहे हैं और वह वंशी वक्षः स्थलसे लगी हुई है। बाबाने एक बार कहा था कि मुझे भगवान श्रीकृष्णकी जिस रूप-माधुरीका दर्शन मिला है, उस छविकी कुछ-कुछ अनुहार इस चित्रमें है। बाबाका यह उपास्य श्रीविग्रह चिन्मय हो उठा और बाबाको दिखलायी दिया कि श्रीविग्रहके दोनों अधर हिल रहे हैं। बाबाका ध्यान उसपर और अधिक केन्द्रित हो गया। अधरोंका हिलना ही नहीं, उसीमें भगवान श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। बाबाका हृदय

आनन्दसे भर गया।

भगवान श्रीकृष्णने बाबासे पूछा– गीताकी विवेचनपूर्ण तात्त्विक व्याख्याके लिखनेका कार्य तो पूरा हो गया। अब मुझे यह बतलाओ, अट्ठारहवें अध्यायके ६८ वें तथा ६९ वें श्लोक–

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः।।६८।।
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि।।६९।।

इन दोनों श्लोकोंके प्रतिपाद्य तथ्यके बारेमें तुम्हारी क्या धारणा है?

इस प्रश्नको सुनकर बाबाने कहा– सभी आचार्योंने तथा श्रेष्ठ टीकाकारोंने 'य इमं परमं गुह्यं' का अर्थ श्रीमद्गीता ही माना है तथा श्लोकका अर्थ ऐसा लगाया है कि इस परम गुह्य गीताशास्त्रका जो मेरे भक्तोंमें प्रचार करेगा, वह मुझे ही प्राप्त होगा और भू-मण्डलमें उससे बढ़कर प्रियतर मेरे लिये कोई होगा नहीं। आचार्योंके इसी मतको मैं भी मानता हूँ।

भगवान श्रीकृष्णने कहा– एक दृष्टिसे यह अर्थ पूर्णतः सही है, परंतु 'य इमं परमं गुह्यं'का परम गूढ अर्थ कुछ और ही है। इसका वास्तविक अर्थ है 'सर्वगुह्यतमं परमं वचः' जो इसी अध्यायके ६४ वें श्लोकमें है।

इस वाक्यको सुनते ही बाबाके अन्तरमें ६४ वाँ श्लोक उभर गया–

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्।।६४।।

बाबाकी प्रतिभा तो प्रखर थी ही। इस श्लोकके उभरते ही एक-एक शब्दके गर्भमें निहित अर्थ भी उभरने लगे। 'सर्वगुह्यतमं' शब्द गीतामें केवल एक बार यहीं आया है और इस सर्वगुह्यतम-परम-वचनका अर्थ है–

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।६५।।

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।६६।।

६४ वें श्लोकमें 'सर्वगुह्यतमं'के तुरंत बाद 'भूयः' शब्द इसलिये आया है कि 'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु' यह पंक्ति ज्यों-की-त्यों नवें अध्यायके ३४ वें श्लोकमें आ चुकी है और यही बात भगवान 'भूयः' अर्थात् पुनः कहने जा रहे हैं तथा यही भगवानका सर्वगुह्यतम-परम-वचन है। इन बातोंको यहाँ लिखने-पढ़नेमें कुछ क्षण तो लगे ही, पर बाबाको यह अर्थ-बोध होनेमें क्षण भी शायद ही लगा हो और फिर तुरंत बाबा भगवान श्रीकृष्णसे पूछ बैठे– तो क्या सर्व-धर्मका परित्याग करके तुम्हारे प्रति सर्व-भावसे आत्म-समर्पण करना ही श्रीगीताजीका सर्वगुह्यतम प्रतिपाद्य तथ्य है और इसका आचरण करनेवाला एवं इस तथ्यका प्रचार करनेवाला ही तुमको सर्वाधिक प्रिय है?

भगवान श्रीकृष्णने कहा– वस्तुतः यही सर्वगुह्यतम तथ्य है। गीताके सर्वान्तमें ज्यों ही यह सर्वगुह्यतम-परम-वचन कहा गया, त्यों ही तथ्यके रक्षार्थ मुझे यह भी तुरंत कहना पड़ा कि जिस व्यक्तिके जीवनमें तप न हो, भक्ति न हो, श्रवणेच्छा न हो और श्रद्धा न हो, ऐसे अतपस्वी-अभक्त-अश्रवणेच्छुक-असूयाप्रिय व्यक्तिके सामने इस परम रहस्यमय तथ्यका कथन नहीं करना चाहिये।

अब बाबाके मनकी विचित्र स्थिति थी। एक नवीन अर्थ, एक नवीन दृष्टि पानेका मनमें परम उल्लास था, पर साथ ही एक आत्यन्तिक खेद भी था कि हाय, व्यर्थ ही मैंने इतने दिवस खो दिये। अपने उल्लासको छिपाते हुए बाबाने भगवान श्रीकृष्णको उपालम्भ दिया– यह अर्थ पहले क्यों नहीं बतलाया? पहले बता देते तो क्या कोई हानि हो जाती? अबतक मुझे भ्रममें क्यों डाले रखा?

भगवान श्रीकृष्णने कहा– मुझे तुम्हारे द्वारा 'गीता तत्त्व विवेचनी' के लेखन-कार्यको सम्पन्न करवाना था। तुम्हारे सहयोगके अभावमें यह कार्य पूर्ण हो ही नहीं पाता। ज्यों ही यह कार्य सम्पन्न हुआ, इन श्लोकोंका मर्म अब तुम्हारे सामने उद्घाटित कर दिया।

इस नवीन दृष्टिको देकर भगवान श्रीकृष्ण तो तिरोहित हो गये

और इसके साथ-साथ परिवर्तित हो गयी बाबाकी विचार-धारा भी। इस सद्योद्घाटित नवीन अर्थके बाद बाबाने यही सोचा— क्षेत्र-संन्यासका नियम लेकर वृन्दावन-वास किया जाये। कर्मयोगकी अथवा ज्ञानयोगकी पद्धतिसे जो साधना किया करते हैं, वे किया करें अथवा कर्म-ज्ञान-भक्तिकी सम्मिलित पद्धतिके अनुसार जो साधनपथपर चलना चाहते हैं, वे उसी पथका अनुसरण करें, परंतु श्रेष्ठतम सरलतम एवं सरसतम साधन है समर्पण-योगका, जो 'मन्मना भव .....' तथा 'सर्वधर्मान्परित्यज्य .....' वाले श्लोकोंमें प्रतिपादित हुआ है। पूर्ण समर्पणमय प्रेमयोगकी रसमयी साधना जितना और जैसा लोकोत्तर सुख प्रदान कर सकती है, वह अन्य किसीके द्वारा सम्भव है ही नहीं।

क्षेत्र-संन्यास लेकर वृन्दावन-वास करनेका विचार अधिकाधिक प्रबल होता जा रहा था, इसके बाद भी एक और विचार बाबाके मनमें सक्रिय था। गीता-प्रचारकी भावना तो सर्वथा निवृत्त हो चुकी थी; हाँ, संत-सेवाकी भावना अभी भी मनमें बनी हुई थी। बाबा ऐसा भी सोच रहे थे— श्रीसेठजी सच्चे संत हैं, सिद्ध संत हैं और ऐसे सच्चे सिद्ध संतकी किंचित् सेवा मेरे द्वारा सम्पन्न हो सके तो यह मेरा सौभाग्य होगा।

इन्हीं भावोंसे भावित हुए बाबा श्रीसेठजीके पास गये तथा वृन्दावन-वासकी अभिलाषा उनके सामने व्यक्त की। श्रीसेठजीने कहा— मेरी तो ऐसी इच्छा है कि आप मेरे साथ रहें और अवश्य रहें, जिससे गीता-प्रचारका कार्य और तीव्र गतिसे हो सके।

बाबाने कहा— आपके साथ रहनेकी चाह तो मेरी भी है, पर मैं तो किसी और हेतुसे आपके साथ रहना चाहता हूँ। अब आपका शरीर वृद्ध हो चला है और फिर आपकी आँखोंमें मोतिया-बिन्दु हो गया है। नेत्र-ज्योतिके अत्यन्त क्षीण हो जानेपर किसी-न-किसीसे सेवा करवानेकी आवश्यकता आपको पड़ेगी ही। ऐसी स्थितिमें मैं तो आपकी लाठी पकड़नेके लिये आपके साथ रहना चाहता हूँ। यदि इसके लिये आप स्वीकृति प्रदान करें तो मैं स्वयंको धन्य मानूँगा।

श्रीसेठजीने तुरंत उत्तर दिया— इस नश्वर शरीरकी सेवाके लिये मैं आपको अपने पास नहीं रखना चाहता। मैं तो आपको साथ रखना

चाहता था श्रीमद्भगवद्गीताजीके प्रचार-कार्यके लिये।

बाबाने विनम्र स्वरमें निवेदन किया— मैं तो आपकी सेवा करनेके विचारसे आपके साथ रहना चाहता था, पर मेरा यह प्रस्ताव आपको स्वीकार ही नहीं है।

श्रीसेठजीकी तथा बाबाकी लगभग एक-डेढ़ घंटेतक बातचीत होती रही। लोक-संग्रहकी भावनासे प्रेरित होकर श्रीसेठजी चाहते थे कि बाबा किसी प्रकारसे गीता-प्रचारके लिये राजी हो जायें, पर गीता-प्रचार और धर्म-प्रचारके प्रति वैसी महत्त्व-बुद्धि अब बाबाके मनमें रह नहीं गयी थी। श्रीसेठजीद्वारा दिया गया सारा प्रबोध-उद्बोध बाबाको अपने निश्चयसे विचलित नहीं कर पाया। फिर तो खिन्न मनसे श्रीसेठजीने बाबाको क्षेत्र-संन्यास लेकर वृन्दावन-वास करनेके लिये अपनी सहमति प्रदान कर दी।

श्रीसेठजीसे विदाई लेकर बाबा अन्तिम विदाई लेनेके लिये बाबूजीके पास आये। बाबूजीके पास भी बात करते-करते लगभग एक- डेढ़ घंटा लग गया। क्षेत्र-संन्यासका व्रत लेकर वृन्दावन-वास करनेके निर्णयका बाबूजीने अनुमोदन नहीं किया। इतना ही नहीं, बाबूजीने इस विचारका परित्याग कर देनेके लिये अनुरोध किया, परंतु इस समय तो बाबाके मन और मस्तिष्कमें भगवान श्रीकृष्णद्वारा सद्योद्घाटित नवीन तथ्य समाया हुआ था। बाबाके मनमें अब यही लगी हुई थी कि कब वृन्दावन पहुँचूँ तथा क्षेत्र-संन्यासका नियम ले लूँ। बाबूजीने बाबाको उस निश्चयसे विरत करनेका बड़ा प्रयास किया। जिस तरह श्रीसेठजीने बाबाको रोकनेका प्रयास किया, उसी प्रकार किया बाबूजीने भी। बाबाको रोकनेका प्रयास इन दोनों महापुरुषोंद्वारा हुआ, परंतु इन दोनों महापुरुषोंके उद्देश्यमें अन्तर था। विगत अढ़ाई वर्षकी अवधिमें बाबूजीको बाबाकी 'पात्रता' का परिचय मिल चुका था। बाबूजीकी पैनी दृष्टि बाबाके जीवनमें किसी ऐसे दिव्य एवं भव्य भविष्यकी सम्भावनाको देख रही थी, जिसकी उपलब्धि ऋषि-मुनि-गणको भी दुर्लभ हो। श्रीसेठजीद्वारा रोके जानेका उद्देश्य था जगतमें श्रीगीता-तत्त्वका चुतर्दिक् प्रचार हो और बाबूजीद्वारा रोके जानेका उद्देश्य था जगतमें प्रेम-धर्मके आदर्शकी प्रतिष्ठा हो। बाबूजीने बाबाको बहुत समझाया, परंतु बाबा भला इस बातको कब सुनने-समझनेके लिये प्रस्तुत थे।

समझाने- बुझानेके प्रयासको असफल देखकर बाबूजीने आत्मीयता पूर्वक कहा– हमलोग चाहेंगे, तब न आप जा पायेंगे। देखें, आप वृन्दावन कैसे जाते हैं?

बाबूजीकी इस प्यार भरी उक्तिका विनोद भरी भाषामें उत्तर देते हुए बाबाने कहा– आप लोग रेल-टिकट नहीं देंगे तो क्या हुआ? भगवानने इस शरीरमें दो पैर दे रखे हैं, पैरोंमें चलनेकी शक्ति दे रखी है और लोगोंसे मार्ग पूछनेके लिये मुखमें वाणी दे रखी है। लोगोंसे मार्ग पूछते-पूछते बाँकुड़ासे आसनसोल चला जाऊँगा, आसनसोलसे रेलकी पटरीके किनारे-किनारे चलते हुए हाथरस पहुँच जाऊँगा और फिर हाथरससे वृन्दावन।

इसके बाद बाबा बाबूजीके पाससे अपने उपासना-कक्षमें आकर बैठ गये। सामने अपने उपास्यका श्रीविग्रह था। पुनः भगवान श्रीकृष्ण उस चित्रात्मक श्रीविग्रहमेंसे प्रकट हो गये। भगवानने पूछा– तुम वृन्दावन क्यों जाना चाहते हो?

बाबाने बतलाया– इसलिये कि वह तुम्हारी लीला-भूमि है।

भगवान श्रीकृष्णने पुनः पूछा– हनुमानप्रसादके संतत्वके बारेमें तुम्हारी संदेह-रहित मान्यता क्या है?

बाबा– मैं उनको सिद्ध कोटिका संत मानता हूँ।

भगवान श्रीकृष्ण– सिद्ध कोटिका संत किसे कहते हैं?

बाबाने तुरंत कहा– जिसका मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सभी कुछ भगवत्स्वरूप ही हो जाता है, वही सिद्ध संत है। उसकी अहं भावना सर्वथा-सर्वांशमें सर्वदाके लिये विगलित हो जाती है। उसका हृदय तुम्हारी लीला-भूमि बन जाता है।

इसी उत्तरकी अपेक्षा और प्रतीक्षा थी। इस उत्तरको सुनते ही भगवान श्रीकृष्णने कहा– जब तुम हनुमानप्रसाद पोद्दारको सिद्ध संत मानते हो तो उनमें और वृन्दावनमें भला क्या अन्तर रहा? उनके अन्तःकरण-चतुष्टयपर मेरा ही पूर्ण रूपसे अधिकार है। उनके हृदय-पटलपर मैं ही विलसित हूँ। यदि यह सचल वृन्दावन है तो वह अचल वृन्दावन है।

बाबाको यह समझनेमें देर नहीं लगी कि जहाँ श्रीकृष्णका नित्य निवास और विलास है, वहीं वृन्दावन है। भगवत्प्राप्त संतके मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार-इंद्रियके पीछे रह जाता है केवल-केवल भगवानका अस्तित्व। उस संतके व्यक्तित्वपर रहता है एक मात्र भगवानका अधिकार और उस संतके माध्यमसे सदा-सर्वत्र सन्निधि रहते हैं पूर्णतः भगवान ही। ऐसे संतके स्थूल शरीरमें और वृन्दावनमें देखने-भरका अन्तर रहते हुए भी वस्तुतः अन्तर होता ही नहीं। भगवान श्रीकृष्णके प्रश्नका कोई उत्तर बाबा दे नहीं पाये, अपितु यह कहना चाहिये कि अपनी मूक वाणीके द्वारा बाबाने स्वीकार कर लिया कि बाबूजीके स्थूल शरीरमें और वृन्दावनमें कोई अन्तर नहीं है। थोड़ी देर बाद भगवान श्रीकृष्णने फिर कहा— जब तुमको चलता-फिरता साक्षात् वृन्दावन सुलभ है, तब अन्यत्र जानेकी क्या आवश्यकता है और इससे अधिक तुम्हें और चाहिये ही क्या?

भगवान श्रीकृष्णके ऐसा कहते ही वृन्दावन-वासके सम्बन्धमें बाबाके मनका निश्चय तो ज्यों-का-त्यों रहा, पर उसके बाह्य स्वरूपमें अन्तर आ गया। क्षेत्र-संन्यासका व्रत लेकर वृन्दावनमें वास करनेका निश्चय वैसा-का-वैसा ही था, पर अब 'क्षेत्र'के अर्थमें परिवर्तन होनेसे क्षेत्र-संन्यासका स्वरूप दूसरा हो गया। अब उस मथुरा-मण्डलान्तर्गत अचल वृन्दावनमें वास नहीं करना है, अपितु इस सचल वृन्दावन श्रीपोद्दारजीके नित्य पास, निरन्तर साथ रहना है। 'क्षेत्र'के नवीन अर्थके अनुसार अब बाबाने बाबूजीके साथ सदा-सर्वदा रहनेका निश्चय कर लिया। बाबूजीके साथ नित्य रहनेका निश्चय होते ही मनमें एक उलझन उत्पन्न हो गयी कि उनके नित्य साथ रहनेका स्वरूप क्या हो? मनमें उचित समाधान स्फुरित नहीं होनेपर बाबाने भगवान श्रीकृष्णके समक्ष अपनी उलझन रख दी। भगवान श्रीकृष्णने कहा— सूर्योदयसे लेकर सूर्योदयतक (अर्थात् चौबीस घंटे) की अवधिमें एक बार श्रीपोद्दारजीका दर्शन कर लो, भले यह दर्शन एक क्षणका ही हो। इसके अतिरिक्त जबतक श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार प्रसन्न चित्तसे अनुमति न दें, तबतक वृन्दावन-धाममें मत जाना।

इतना कहकर भगवान श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। अब बाबाके मनसे वृन्दावन जानेका निश्चय विसर्जित हो गया था। बाबा अपने उपासना-कक्षसे उठकर बाबूजीके पास आये। बाबूजी अपने सम्पादन-कार्यमें

संलग्न थे। बाबूजीके पास बैठकर बड़े मीठे शब्दोंमें बाबाने कहा– भाईजी! अब मैं वृन्दावन नहीं जाऊँगा।

बाबूजीने कहा– आपको कौन रोकता है? आप वृन्दावन जाइये। लोग आपको वृन्दावनका मार्ग भी बता देंगे।

बाबूजीके घुटनोंको प्यार भरे हाथोंसे सहलाते हुए बाबा पुनः कहने लगे– नहीं भाईजी! अब वृन्दावन जानेका विचार छोड़ दिया है। अब तो एक ही बात है। सदा आपके पास आपके साथ रहना है। बस, चौबीस घंटेमें एक बार आपका दर्शन मिल जाया करे।

परखनेके लिये बाबूजीने आनाकानी कम नहीं की, परंतु अन्तमें बाबाको अपने मनुहारमें सफलता मिली। अपने पास नित्य साथ रहनेके लिये बाबूजीने बाबाको अपनी अनुमति प्रदान कर दी।

* * * * *

मातृ-चरण के अन्तिम दर्शन

अपने पास नित्य साथ रहनेके लिये बाबूजीने बाबाको ज्यों ही अनुमति प्रदान की, बाबाको परमाह्लाद हुआ। यह जीवन-धारामें एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था। एक नवीन अध्यायका शुभारम्भ था। नित्य साथ रहनेके व्रतका जीवनमें निर्वाह भली प्रकारसे हो, इसके लिये बाबा पूर्ण रूपसे कटिबद्ध थे। बस, एक बाधा थी। बाबाको अपनी जन्मदात्री माँकी स्मृति कभी-कभी गहराईसे हो आया करती थी। इस स्मृतिसे भी ऊपर उठ जानेके लिये बाबा अपनी माँसे एक बार और अन्तिम बार मिलना चाहते थे और इस मिलनके लिये वे बाबूजीसे प्रसन्न आज्ञा प्राप्त करना चाह रहे थे। इस भावसे प्रेरित होकर बाबाने बाबूजीसे कहा– मैं आपसे एक बात और कहना चाहता हूँ, पर अपनी बात मैं तब बताऊँगा, जब आप पहले उसके लिये स्वीकृति प्रदान कर दें।

बाबूजी– पता नहीं, आप क्या कहेंगे?

बाबा– मैं आपसे किसी अशुभ अथवा असत्य बातके लिये तो अनुरोध करूँगा नहीं, फिर आपको स्वीकृति देनेमें क्या आपत्ति है?

बाबूजी– पहले आप अपनी बात तो कहें।

बाबा– मुझे अपनी जन्मदात्री माँकी स्मृति कई बार आती है। मैं अपनी माँका दर्शन एक बार करना चाहता हूँ। यह मेरे लिये अन्तिम दर्शन होगा। आप कह दें कि अपनी माँका दर्शन करके आप मेरे पास आ जायें।

बाबूजी– इसके लिये आपको कौन रोकता है?

बाबा– यही तो मैं कहता हूँ कि आप वाणीका घुमाव-फिराव छोड़कर सीधे-सीधे कह दीजिये।

बाबूजीने बाबाको अपनी माताजीका दर्शन कर आनेके लिये कह दिया। अनुमति मिलनेपर बाबाने बाबूजीसे कहा– मैं आपसे एक आश्वासन और चाहता हूँ।

भगवान श्रीकृष्णसे वार्तालाप होनेके बादसे बाबाको बाबूजीके स्वरूप, उनके सामर्थ्य, उनकी महत्ता, उनके प्रभावका परिज्ञान हो चुका था। बाबूजीने पूछा– क्या चाहते हैं?

बाबाने कहा– अपने गाँव जानेपर माँकी ममताके कारण मेरे सामने कोई बाधा या उलझन उपस्थित न हो। बस, माँका अन्तिम दर्शन करके आपके पास आ जाऊँ। माँके पास जानेकी स्फुरणा मनमें अवश्य उठती है, किंतु मेरे पैर गाँवपर जानेके लिये उठ पायेंगे आपसे आश्वासन मिलनेके बाद ही कि किसी प्रकारकी कोई बाधा खड़ी नहीं होगी।

बाबूजीने यह भी आश्वासन प्रसन्न मनसे बाबाको दे दिया। आश्वस्त मनसे बाबाने अपने गाँव जानेके लिये बाँकुड़ासे प्रस्थान किया। बाबाके लिये बाबूजीने द्वितीय श्रेणीकी रेल-टिकट कटवा दी। उन दिनों रेलगाड़ीमें चार श्रेणियाँ–प्रथम, द्वितीय, मध्यम और तृतीय हुआ करती थीं। द्वितीय श्रेणीके डिब्बेमें भीड़से उत्पन्न होनेवाली परेशानीका प्रश्न ही नहीं था। बाबाको रेलगाड़ीमें चढ़ानेके लिये बाबूजी स्वयं स्टेशनपर आये और रेलगाड़ीके चल देनेके बाद ही बाबूजी स्टेशनसे वापस लौटे।

द्वितीय श्रेणीकी टिकट कटवाते समय बाबूजीने सोचा कुछ और था और विधि-विधानसे हो गया कुछ और ही। द्वितीय श्रेणीके डिब्बेमें बाबाके बगलमें एक ईसाई-दम्पति बैठे हुए थे। उस ईसाई व्यक्तिको एक हिन्दू संन्यासी सह्य नहीं हो पा रहा था। उस ईसाई व्यक्तिने बाबाको धकियाना शुरू किया। उसके दुर्व्यवहारकी उपेक्षा करते हुए बाबा शान्त बैठे रहे।

इसपर भी उस ईसाईकी धृष्टता कम नहीं हुई। संन्यासी होनेके नाते बाबाने उसकी धृष्टताको सह लिया और एक ओर सरक गये। बाबा ज्यों-ज्यों शिष्टता बरतते, त्यों-त्यों उसकी धृष्टता बढ़ती जाती। बाबा बार-बार सरकते जाते और जब सरकनेके लिये स्थान ही नहीं रहा तो बर्थसे नीचे उतरकर डिब्बेके फर्शपर बैठ गये। अब उस ईसाईकी धृष्टताने दुष्टताका रूप ले लिया। बर्थके नीचे बैठ जानेके बाद भी जब वह ईसाई अपनी दुश्चेष्टासे बाज नहीं आया, तब बाबा तुरंत खड़े हो गये और आँख निकालकर कड़क आवाजमें बोले– Am I not a man (क्या मैं एक मानव नहीं हूँ)?

बाबाका ऐसा बोलना था कि उस ईसाईकी मेम घबड़ा उठी। उस मेमने भयभीत वाणीमें अपने पतिसे कहा– तुम शान्त रहो, तुम शान्त रहो। इसे तंग मत करो। यह पागल है। तुम पागलको तंग मत करो। कहीं हमला कर दे तो क्या होगा?

मेमके कहनेपर वह ईसाई अपनी सीटपर बैठ गया और बाबा भी अपनी सीटपर बैठ गये। जिस डिब्बेमें बाबा बैठे थे, उसी डिब्बेमें एक और यात्री चढ़ गये। वे जातिके क्षत्रिय थे और स्वभावसे सात्त्विक थे। वे यात्री बाबाके पास ही बैठ गये। बिना कारण ही उस यात्रीके मनमें बाबाके प्रति एक प्रकारका खिंचाव-सा होने लगा। वे मन-ही-मन सोचने लगे कि ये संन्यासी हैं, पता नहीं, इनके पास रेल-टिकट है या नहीं। यदि रेल-टिकट नहीं होगी तो टिकट-चेकर इन्हें तंग करेगा। पूछकर पता लगा लेना चाहिये और यदि रेल-टिकट नहीं हो तो उसकी व्यवस्था मैं क्यों नहीं कर दूँ? फिर उस यात्रीने आदरपूर्वक वन्दन करनेके उपरान्त बाबासे पूछा– स्वामीजी! क्या आपके पास रेल-टिकट है?

अपनी रेल-टिकट दिखलाते हुए बाबाने कहा– यह देखिये, मेरे पास द्वितीय श्रेणीकी टिकट है।

उस यात्रीका मन निश्चिन्त हो गया, परंतु उसका मन अधिकाधिक बाबाकी ओर आकृष्ट होता चला जा रहा था। उन्होंने मन-ही-मन सोच लिया कि मुझे इन स्वामीजीके साथ चलना है। जहाँ ये रेलसे उतरेंगे, वहीं मैं भी उतर जाऊँगा तथा इन्हें जिस स्थानपर जाना होगा, वहाँ जानेके लिये रेल या बसकी टिकट कटाकर अथवा टैक्सीमें चढ़ाकर इनके जानेकी

व्यवस्था कर दूँगा। ऐसा ही उन्होंने किया भी। गया स्टेशनपर उतरनेके बाद गाँवतक पहुँचनेका प्रबन्ध उन्होंने कर दिया। वस्तुतः योग-क्षेम वहन करनेवाले भगवान सबकी सुधि रखते हैं और अकारण सुहृद् भगवानकी यह मङ्गलमयी लीला थी कि उस यात्रीको प्रेरणा देकर भगवानने बाबाकी सारी व्यवस्था कर दी। बाबाका नियम था कि मैं किसीसे कुछ याचना नहीं करूँगा, पर इस अयाचित और अद्भुत व्यवस्थाके फलस्वरूप बाबा अपने गाँव ठीक प्रकारसे पहुँच गये।

बाबा सूर्यास्तके समय गाँवपर पहुँचे थे। माँकी ममता अपने पुत्र चक्रधरके लिये अत्यधिक विकल थी। यह ममता कभी कल्पना भी नहीं कर पाती थी कि मेरा चक्रधर अब कभी गाँवपर आयेगा और मैं अपनी आँखोंसे उसे देख पाऊँगी। यह अकल्पनीय बात इस समय प्रत्यक्ष थी। बाबाके आनेकी जानकारी घरमें ज्यों ही दी गयी, त्यों ही माँ अपनी सुध-बुध खोये हुए, अपने वस्त्रोंकी सँभाल भुलाये हुए घरके बाहर आयी। उस सित-केशी कृश-वदना अति-वृद्धा माँने देखा कि मेरा लाल मेरे द्वारपर खड़ा है, पर अपने लालको देखकर भी वह नहीं देख पा रही थी। भावका आवेग इतना अधिक हो रहा था कि अपने द्वार-स्थित लालसे ही वह भाव-भ्रमिता वृद्धा पूछने लगी— क्या मेरे बेटेको तुमने देखा है? तुम बताओ तो कि मेरा बेटा कहाँ गया है? वह क्यों चला गया है? सच बताओ, क्या तुमने मेरे बेटेको देखा है? वह कबतक आयेगा? बस, एक बार मिल लेता।

वात्सल्यके प्राबल्यने माँके व्यक्तित्वको नख-शिख झकझोर दिया था। भावावेगमें वह अपने बेटेको ही नहीं पहिचान पा रही थी। उन्मादिनीकी भाँति न जाने कितने प्रकारकी जिज्ञासाएँ वह व्यक्त कर रही थी। माँकी उन्माद-भरी स्थितिको देखकर बाबा चकित थे। बाबा बहुत देरतक चुपचाप खड़े रहे। पास- पड़ोसके लोग भी आ गये थे, पर माँको था न तो पड़ोसियोंका ध्यान और न स्वयंका भान। बाबाके लिये समस्या बन गयी कि किस प्रकार माँ प्रकृतिस्थ हो। बाबाको अपने बचपनकी एक बात याद आ गयी। अपने बचपनमें बाबा कई बार चञ्चलतावशात् अपनी माँसे हठकर बैठते थे कि मैं स्तन-पान करूँगा। माँ कहती कि अब इन शुष्क स्तनोंमें दूध नहीं है, पर हठी पुत्रके समक्ष उसको झुकना पड़ता। शुष्क

स्तनोंको चूसते-चूसते कौतुकी पुत्रद्वारा कभी दाँत गड़ा दिये जानेपर माँ डाँटने लगती और कहने लगती कि 'अरे कोढिया! अरे कोढिया!! यह क्या रे? यह तू क्या कर रहा है रे?' इससे अधिक वह परम वत्सला माँ कहती भी क्या? इस प्रसंगकी स्मृति होते ही वात्सल्य-भावोन्मादिनी माँको प्रकृतिस्थ करनेके लिये बाबाके मनमें एक उपाय उभरा। आस-पास खड़े हुए लोगोंकी लज्जाको छोड़कर और संन्यासीपनके भावसे ऊपर उठकर बाबाने सबके सामने ही अपनी माँके स्तनोंपर अपने दाँत गड़ा दिये, वैसे ही गड़ा दिये, जिस प्रकारसे अपने बचपनमें किया करते थे। दाँतका गड़ाया जाना था कि माँको अपने पुत्रकी उपस्थितिका परिज्ञान हो गया। अपने लालके मस्तकको माँने अपनी छातीसे चिपका लिया। अब अश्रु केवल माँके कपोलको ही नहीं भिगो रहे थे, अपितु उस संन्यासी पुत्रके मुण्डित शीशपर भी बह रहे थे। अपने लालके शीशको अपनी छातीसे चिपकाये माँ बहुत देरतक खड़ी रही।

भावके किञ्चित् शमित होनेपर माँने बेटेसे कहा– घरमें चल।

बाबाने विनम्र शब्दोंमें कहा– संन्यासीके लिये अपने घरमें रहना उचित नहीं।

तब माँने पूछा– फिर तू कहाँ ठहरेगा?

बाबाने बतलाया– गाँवके बाहर बगीचेमें।

यह सुनकर माँने कहा– चल, मैं भी तेरे साथ चलती हूँ।

बाबाके साथ चलनेके पहले माँ चट घरमें गयी और एक छोटी-सी पोटली लेकर आयी। बाबा चल पड़े। आगे-आगे बाबा जा रहे थे और पीछे-पीछे माँ। बाबाके परिवारमें पर्देकी मर्यादा बहुत अधिक रही। घरकी स्त्रियाँ प्रायः घरके बाहर नहीं निकलतीं। आज माँको न तो पर्देकी परवाह थी और न घरकी मर्यादाकी चिन्ता थी। गाँवके छोटे-बड़े लोगोंसे बेखबर माँ नेत्रोंके आँसुओंको बार-बार पोंछती हुई बाबाके पीछे-पीछे चली जा रही थी। गाँवके बाहर एक हाई स्कूल और एक पाठशाला थी। यह पाठशाला एक उद्यानमें थी। हाई स्कूलका फर्श सीमेंटका बना हुआ बढ़िया था और पाठशालाका फर्श मिट्टीका बना हुआ कच्चा था। बाबाने माँसे कहा– मैं इसी पाठशालामें ठहरूँगा।

इस पाठशालामें ही बाबा ठहरे। इधर तो बाबा अपने हाथ-पैर धो रहे

थे, उधर माँ अपनी पोटलीकी पुड़ियाओंमें व्यस्त थी। माँने उस पोटलीमें कई बड़ी-बड़ी पुड़ियाएँ इकट्ठी कर रखी थीं। माँ एक-एक पुड़ियाको खोलती और उसे सूँघती। उसमें दुर्गन्ध पाकर नाक सिकोड़ते हुए माँ उस पुड़ियाकी वस्तुको एक किनारे फेंक देती। एकके बाद दूसरी, दूसरीके बाद तीसरी, इस प्रकार प्रत्येक पुड़ियाको वह फेंकती चली जा रही थी। बाबा यह सब देख रहे थे। बाबाने पूछा— माँ! तू यह क्या कर रही है?

माँने बतलाया— बेटा! जब भी घरमें कोई बढ़िया चीज बनती अथवा तेरी प्रिय चीज बनती तो मैं उसे पुड़ियामें बाँधकर रख देती थी कि यदि तू कभी आयेगा तो तुझे खिलाऊँगी, पर अब तो ये सब खाने लायक रही नहीं। सबमें दुर्गन्ध आ रही है, अतः फेंक दे रही हूँ।

माँके इस अगाध वात्सल्यपर बाबा बलिहारी जा रहे थे। माँ अच्छी तरह जानती थी कि मेरा पुत्र संन्यासी हो गया है और अब वह कभी भी घरपर नहीं आयेगा, इसके बाद भी अपने संन्यासी बेटेके लिये उसके हृदयका पागल प्यार खानेकी वस्तुओंको पुड़ियाओंमें संग्रह करता ही रहता था। मातृ-हृदयका यह पवित्र पागलपन एक परमाद्भुत वस्तु है, जिसकी गरिमाको न कोई आँक पाया है और न उसकी गहराईको कोई छू पायेगा। एक-एक करके वे सारी पुड़ियाएँ फेंक दी गयीं। फिर तो माँने बाबाको सद्यः सिद्ध भोजन करवाया। माँ रात्रिभर वहीं पाठशालामें ही रही। बाबाने माँसे कहा— तू सो जा।

माँने भरे-भरे स्वरमें कहा— सोनेके लिये समय तो मुझे फिर भी मिल जायेगा, पर तू मुझे फिर कब मिल पायेगा?

माँ इतना तो जान ही रही थी कि यह यहाँ केवल कुछ दिनोंके लिये ही आया है। फिर माँने स्खलित वाणीमें कहा— अब तू केवल मेरा बेटा थोड़े ही है। जो भी तुझे बेटा कहेगा, उसे तू माँ कह देगा। अब तो तू सारे संसारका है।

इस प्रकारकी बातें माँ कहती जाती थी और अपने आँसू पोंछती जाती थी।

प्रातःकाल बाबा शौचके बाद स्नान करनेवाले थे। उसी समय माँने बाबाके स्नानके लिये कुएँसे जल निकाला। आज उस वृद्धाके कृश शरीरमें न जाने कहाँसे इतनी शक्ति आ गयी थी कि कुएँसे बार-बार जल निकाल

करके भी माँमें थकानका नाम भी नहीं था। बाबा लगभग आठ-नौ दिन अपने गाँवपर रहे। इस अवसरपर बाबाके पूर्वाश्रमके चचेरे बड़े भाई पूज्य श्रीदेवदत्तजी मिश्रने श्रीमद्भागवत सप्ताहकी कथा सात दिनतक कही। कथा बाबाके घरपर होती। कथा सुननेके लिये बाबा घरपर जाते तथा कथा पूर्ण होनेपर प्रतिदिन सायंकाल पाठशालापर वापस आ जाते। बाबाके आनेकी बात सुनकर न केवल उस गाँवके लोग, अपितु आस-पासके कई गाँवके लोग बाबासे मिलनेके लिये आने लगे। बाबाके पिताश्री जिस राजवंशके कुल-पुरोहित थे, वे राजासाहब भी बाबाके पास आये और उन्होंने बाबाको साष्टांग प्रणाम किया। कहाँ तो एक बड़ी उम्रके अति सम्माननीय राजासाहब और कहाँ एक युवक संन्यासी! राजासाहबको प्रणाम करते देखकर बाबाको बड़ा संकोच हुआ। बाबाने तुरंत उठकर उनका यथोचित स्वागत-सत्कार किया।

ग्राम-वासकी अवधिमें एक दिन बाबाके कमण्डलुकी चोरी हो गयी। जब बाबा रात्रिके समय उद्यानमें सोये हुए थे, तब उस घने अँधेरेमें कोई व्यक्ति उनका कमण्डलु उठा ले गया। प्रातःकाल उठनेपर बाबाको कमण्डलु नहीं मिला। बाबाने किसीसे कुछ कहा नहीं, परंतु शौच-स्नानादिकी क्रियाको सम्पन्न करनेके लिये जलपात्रकी आवश्यकता तो थी ही। बाबाने देखा कि उद्यानके बाहर एक किनारे मिट्टीकी एक हड़िया पड़ी है। उसपर बड़ी कालिख चढ़ी हुई है। यह कालिख धुएँ और आगपर चढ़े होनेके कारण थी। हो सकता है कि शवयात्रामें काम ले लेनेके बाद उस हड़ियाको फेंक दिया गया हो। संन्यासीकी दृष्टि सम होनी चाहिये, अतः बाबाने वह हड़िया उठा ली। उन्होंने बालूसे रगड़-रगड़ करके उसे खूब माँजा, जिससे उसकी कालिख छूट जाय। पर्याप्त साफ कर लेनेके बाद बाबा जलपात्रके रूपमें उसका उपयोग करने लगे। जब लोगोंको ज्ञात हुआ कि कमण्डलुके चोरी चले जानेके कारण बाबा एक परित्यक्त पुरानी हड़ियाको अपने काममें ले रहे हैं तो सभीके चित्तमें बड़ी खिन्नता हुई। गाँवके एक बढ़ईने उसी समय काठका एक सुन्दर कमण्डलु बनाकर बाबाको भेंट किया। काष्ठ निर्मित कमण्डलुके मिलनेसे बाबाको तो प्रसन्नता हुई ही, इसीके साथ अनेकोंकी विकल भावनाओंको भी बड़ा विश्राम मिला।

इस अवसरपर बाबाने अपने पूर्वाश्रमके बड़े भाई पं. श्रीसीतारामदत्तजी

मिश्रसे बड़ी महत्त्वपूर्ण बात कही– मैं और आप सहोदर भाई हैं। इस भ्रातृत्वको विश्वमें कोई मिटा नहीं सकता, पर पहलेके सम्बन्धमें और आजके सम्बन्धमें कुछ अन्तर अवश्य हो गया है। पहले हमलोगोंको परस्परमें बाँधनेवाली थी माया और इसी मायाके कारण भाई ही भाईका विरोधी बन जाता है। इसी मायाके कारण एक भाई यहाँतक विरोध ठान लेता है कि क्षुद्र जागतिक इच्छाओंकी पूर्तिके लिये अपने भाईके प्राणका भी घात करनेसे नहीं चूकता, पर अब मेरे और आपके बीचमें माया नहीं रही। मायाका स्थान ले लिया है भगवानने। बीचमें भगवानकी प्रतिष्ठा हो जानेसे अब हमलोगोंका सम्बन्ध परम पवित्र परम उत्कृष्ट हो गया है। हमलोगोंका यह सम्बन्ध अक्षुण्ण है।

बाबाकी इस प्रीति समन्वित वाणीको सुनकर पं. श्रीतारादत्तजी विभोर हो उठे। उन्होंने बाबासे कहा– चक्रधर! बचपनमें मैंने तुमको अपने कंधेपर बहुत बैठाया है। घरसे बाजार जाते समय अथवा रामलीलाके मेलेसे घर आते समय तुम मचल उठते थे और तुम्हारे मनकी करनेके लिये मैं तुमको अपने कंधेपर बैठा लेता था और दूरतक ले चलता था। यह सही है कि लोककी दृष्टिसे भाईके नाते मैं तुमसे बड़ा हूँ, पर उससे भी अधिक सही और सच्ची बात यह है कि अध्यात्मकी दृष्टिसे आज तुम मुझसे बहुत बड़े हो और अब उस अध्यात्मके पथपर तुमको ही मेरा भार अपने कंधेपर ढोना है।

सहोदर भाईके इन उद्‌गारोंको सुनकर बाबाका अन्तर विह्वल हो उठा। इन दिनों माँ लगातार बाबाके पास ही रहती। शौच-स्नानके लिये वह जाती अवश्य थी और इतना समय छोड़कर वह बाबासे अलग होती ही नहीं थी। माँका यह वात्सल्य अनोखा था। माँके इस वात्सल्यके प्रति बाबाके मनमें अत्यधिक आदर था, पर वात्सल्यको देखकर बाबाका मन मोहाच्छन्न नहीं हुआ। अपने मनकी तत्कालीन विचित्र स्थितिके बारेमें बतलाते हुए बाबाने एक बार कहा था– एक ओर तो मैं माँके प्यारमें डूब-उतरा रहा था, उससे मेरा रोम-रोम संसिक्त हो रहा था, पर इसके साथ ही मेरे मनमें अपरिसीम वैराग्य और आत्यन्तिक विरक्ति भी भरी हुई थी।

श्रीमद्‌भागवत सप्ताहकी कथा विधिवत् सम्पूर्ण हुई। कथाके सम्पूर्ण होनेपर बाबाने माँसे कहा– संन्यासीको अपने गाँवपर अधिक नहीं रहना चाहिये।

इतना कहना था कि माँके धैर्यका बाँध टूट गया। उसके लिये तो ये शब्द वज्रपातके समान ही थे। माँको लगा कि अब मेरा बेटा मुझसे सदाके लिये जा रहा है। उसके आँसुओंका अजस्र स्रोत फूट पड़ा। थोड़ी ही देरमें यह बात सारे गाँवमें फैल गयी। पाठशालाके पास भीड़ इकट्ठी हो गयी। अपने कंधेपर कटिवस्त्र तथा हाथमें कमण्डलु लेकर बाबा चलनेके लिये तैयार हो गये। बाबाकी एक सहोदरा बहिनका नाम रहा सुहागमणि। उनके पति श्रीयुगलकिशोरजी संस्कृतके उद्भट विद्वान थे। वे भी वहीं खड़े थे। माँने अपने जामाता श्रीयुगलकिशोरजीसे विनती की– क्या आप मेरा एक काम कर देंगे?

उस समय सारा वातावरण करुणापूर्ण हो रहा था। वे ही क्यों, हर एक व्यक्ति माँके आदेशका पालन करनेके लिये प्रस्तुत था। श्रीयुगलकिशोरजीने कहा– कहिये, क्या बात है?

माँने कहा– आप इसे पटनातक छोड़ आयें। वहाँसे फिर यह जहाँ जाना चाहेगा, रेलगाड़ीसे चला जायेगा।

माँके इस आदेशके पालनमें उन्होंने अपना सौभाग्य ही समझा। श्रीयुगलकिशोरजीने माँसे कहा– मैं अवश्य चला जाऊँगा।

जानेके लिये टैक्सी आ गयी। विदा होनेका समय अब समीप था। अब बाबाको अपने गाँवसे, ग्रामवासियोंसे, परिवारसे और अपनी जन्मदात्री माँसे अन्तिम विदाई लेनी है। लोगोंसे घिरे हुए बाबा खड़े थे अपनी माँके सामने और माँ खड़ी थी अपनी भीगी आँखें, भीगे कपोल और भीगा आँचल लिये हुए। सबका हृदय भर-भर आ रहा था, किन्तु माँकी विकलताकी तो सीमा ही नहीं। उसी समय माँने भीगी-भीगी भीनी-भीनी वाणीमें कहा– कुछ खा ले।

उस समय माँके हाथमें या पासमें कुछ था नहीं, पर वात्सल्य-भावका महोद्रेक होता ही है ऐसा अनोखा!

बाबाके मुखसे निकल गया– दे।

बाबाके मुखसे 'दे' निकलते ही माँ घरके लिये दौड़ पड़ी। वह हवाकी तरह भागती जा रही थी। घरमें जो भी मिला, वही वह ले आयी। उसने वह मिष्टान्न बाबाके हाथपर रख दिया।

बाबाने पूछा– यह अन्नाहारी है या फलाहारी?

माँने कहा– यह फलाहारी है। इसे खा ले। तेरा मंगल ही होगा।

बाबाने तुरंत वह मिष्टान्न खा लिया। उस अमृतमय मिठासकी स्मृति बाबाको अपने परवर्ती जीवनमें सदा ही बनी रही। मिष्टान्न खा लेनेके बाद बाबाने माँके चरणोंमें मस्तक रखकर प्रणाम किया। माँने बाबाके मस्तकपर, चरणोंसे लगे हुए मस्तकपर अपने दोनों हाथोंको रखकर भर्राये स्वरमें अपने लालको आशीर्वाद दिया– सुखी रहो, सदा सुखी रहो!

गुरुजन-पुरजन-परिजन-स्वजन आदि सभीसे विदाई लेकर बाबा टैक्सीपर चढ़े तथा श्रीयुगलकिशोरजीके साथ पटना स्टेशनपर आ गये। बाबाको सूचना मिल चुकी थी कि बाबूजी बाँकुड़ासे कलकत्ता चले गये हैं। बाबा पटनासे कलकत्ता गये तथा गोविन्द-भवनमें बाबूजीसे मिले। बाबाको देखकर बाबूजीको बड़ी प्रसन्नता हुई।

* * * * *

नित्य-संग का संकल्प

अपनी जन्मदात्री माँसे मिलकर बाबाको बड़ा परितोष मिला। परम वत्सला माँसे अमोघ आशीर्वाद प्राप्त करके बाबा बाबूजीके पास कलकत्ता चले आये।

यह दिन ११ मई १९३९ का था। बाबा दोपहरके समय गंगा-स्नानके लिये गये। परम पावनी गंगाजीमें स्नान करनेके उपरान्त माँ गंगाके तटपर खड़े होकर तथा हाथमें गंगाजल लेकर बाबाने संकल्प किया– इस क्षण मध्याह्नके बादसे मैं श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारके साथ नित्य-निरन्तर-निरवधि रहूँगा। हम दोनोंमें वियोग होगा ही नहीं। भविष्यमें हम दोनोंमें यदि वियोग हुआ तो वह अब मात्र मृत्यु ही करा पायेगी अथवा तब, जब श्रीपोद्दारजी मुझे वृन्दावन जानेके लिये स्वयं प्रसन्न चित्तसे अनुमति प्रदान करेंगे।

ऐसा संकल्प करके बाबाने अपनी अञ्जलिका जल पुण्य-सलिला माँ गंगाके निर्मल प्रवाहमें छोड़ दिया। ११ मई १९३९ के मध्याह्नके बादसे बाबा नित्य ही बाबूजीके साथ रहने लगे। बाबाके मनमें इस संकल्पके वास्तविक अर्थको चरितार्थ करनेके लिये एक 'पूरक-संकल्प' और था। बाबा मन-ही-मन कृत-संकल्प थे कि यदि श्रीपोद्दारजीके शरीरान्त होनेके पूर्व ही मेरा निधन हो जाता है तब तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता, पर यदि

श्रीपोद्दारजीका निधन पहले होता है तो जहाँ उनकी चिता प्रज्ज्वलित होगी, उस चिता-स्थलीपर मैं अपने जीवनके अन्तिम क्षणतक वास करूँगा।*

अड़चनोंमें भी इस जीवन-व्रतका निर्वाह किस प्रकार हो पाया, उदाहरण-स्वरूप एक प्रसंग लिख रहा हूँ—

एक बार पूज्य श्रीसेठजी बहुत अधिक बीमार हो गये। उन्हें देखनेके लिये बाबूजी गये। वे गोरखपुरके साहबगंज मोहल्लेमें आदरणीय श्रीघनश्यामदासजी जालानके घरपर थे। मध्याह्नके समय गये हुए बाबूजी दिनभर वहीं रहे। श्रीसेठजीकी स्थिति ऐसी नाजुक थी कि बाबूजी रात्रिको भी गीतावाटिका वापस नहीं आ पाये। इस बातकी किसे कल्पना थी कि आधी रातत्तक भी बाबूजी गीतावाटिका नहीं लौट पायेंगे? यदि तनिक भी अनुमान होता तो बाबूजी बाबासे मिलकर ही गीतावाटिकासे जाते। श्रीसेठजीकी रुग्णताके कारण सभीका मन व्यग्र था, इस व्यग्रताके वातावरणमें बाबूजीको भी स्मरण नहीं रहा कि बाबासे मिलना है। आधी रातसे अधिक हो जानेपर पूज्या माँ अत्यधिक सचिन्त हो उठीं। तरह-तरहके विचार उनके मनमें आने लगे— बाबाका क्या होगा? क्या बाबा हमलोगोंको छोड़कर वृन्दावन चले जायेंगे? क्या बाबाका नियम खण्डित हो जायेगा? क्या साथ रहनेका व्रत सूर्योदय होते ही समाप्त हो जायेगा?

इस प्रकारसे चिन्ता करते-करते एक-दो घंटे बीत गये। माँका कोमल

---

*बाबा द्वारा कृत-संकल्पकी गम्भीरताको हृदयंगम करानेके लिये भविष्यमें घटित प्रसंगको अभी लिख देना आवश्यक लग रहा है। प्रसंगानुरोधसे प्रेरित होकर ऐसा करना पड़ रहा है।

बाबासे 'जाने'की अनुमति लेकर २२ मार्च १९७१ को पूज्य बाबूजीने महाप्रस्थान किया। अपने महाप्रस्थानकी अनुमति पूज्य बाबूजीने दो-तीन दिन पहले ही ले ली थी। बाबूजीकी रुचिको अपनी रुचि माननेवाले बाबाने अवसन्न मनसे बाबूजीको महा-विदाई दी। बाबाका निवास उनके 'पूरक-संकल्प'के अनुसार उसी स्थानपर बना रहा, जहाँ बाबूजीकी चिता सजाई गयी थी। उनके महाप्रस्थानके पूर्व ११ मई १९३९ से लेकर २२ मार्च १९७१ तक, इन बत्तीस वर्षोंकी अवधिमें अड़चनें बहुत आयीं, पर प्रभु-कृपासे बाबाके उन संकल्प-निर्वाहमें कभी कोई अपवाद आया ही नहीं। अगणित बाधाओंके बाद भी बाबाकी चादरमें कभी रंचमात्र दाग लग ही नहीं पाया।

प्लेटफार्म पर ध्यानस्थ

ट्रेन की प्रतिक्षा में

बाबूजी द्वारा दीक्षा

सन् १९३६ में बाबूजीसे भेंट हो चुकने तथा समय-समयपर उनसे लगभग सतत सम्पर्क बने रहनेके बाद भी जबतक बाबा टीका-लेखनके कार्यमें व्यस्त रहे, तबतक रसोपासनाकी ओर प्रवृत्त होनेके लिये उपयुक्त वातावरण था ही नहीं। यह ठीक है कि सन् १९३६ ई. में बाबूजीसे प्रथम भेंट होते ही बाबा साकारोपासनावादी हो गये थे और इतना ही नहीं, इसके कुछ दिन बाद तुरन्त ही भगवान श्रीकृष्णका दर्शन भी बाबाको हो गया था और यह भी ठीक है कि इसके लगभग एक वर्ष बाद सन् १९३७ ई. में बाबाको गीताप्रेसके एक कमरेमें रसोपासनासे सम्बन्धित एक विशेष दिव्यानुभव भी हुआ था, इतना सब होनेके बाद भी व्रजभावके उस बीजको भली-भाँति अंकुरित हो उठनेके लिये सर्वथा अनुकूल अवसर नहीं मिल पाया था। अनुकूलताके अभावका मुख्य हेतु था टीका-लेखनके कार्यमें पूर्ण दत्त-चित्तता एवं अत्यधिक व्यस्तता। टीका-लेखनके उत्तरदायित्वका वरण बाबाने स्वेच्छासे किया था। ११ मई १९३९ से बाबा, बाबूजीके नित्य साथ रहने लगे थे। बाबूजीकी नित्य निकटताके सुलभ होनेके बाद बाबाके जीवनमें वैसी व्यस्तता रह ही नहीं गयी थी। किसी भी प्रकारके उत्तरदायित्वसे विहीन पूर्ण एकान्त तो बाबाको मिला ही, इसीके साथ प्राप्त हो गया बाबूजीका सरस सामीप्य। एक ओर यह पूर्ण एकान्त और दूसरी ओर वह सरस सामीप्य, इन दोनोंने व्रजभावके उस बीजको अंकुरित होनेके लिये उन्मुक्त और अनुकूल अवसर प्रदान किया, जिसका वपन सन् १९३६ई. में हो चुका था।

व्रजभावकी साधनाका भाव मनमें उदित होते ही बाबाकी सबसे पहली जिज्ञासा यह थी कि उस साधनाका स्वरूप क्या हो? श्रीकृष्ण-तत्त्व क्या है, श्रीराधा-तत्त्व क्या है, श्रीराधाकृष्णके नित्य धाम वृन्दावनका स्वरूप क्या है, श्रीराधाकृष्णकी सरस उपासनाकी पद्धति क्या है, उनका ध्यान कैसे किया जाता है, उनकी प्रसन्नताकी प्राप्ति कैसे हो सकती है, इस प्रकारकी अनके जिज्ञासाओंसे उनका मन भरा हुआ था। बाबा सोलह नामवाले महामन्त्रका जप करते ही थे और कुछ मानसिक पूजन भी होता

था, पर वे अपने मानसिक जगतके लिये एक आधारकी खोजमें लगे हुए थे। बाबाके मनमें यह भी था कि यदि अष्टकालीन सेवाका क्रम मिल जाता अथवा किसी प्रकारसे लीलाके चिन्तनका ढंग बैठ जाता तो तदनुसार श्रीप्रिया-प्रियतमकी सेवा करता। मनमें बड़ी उत्कण्ठा बनी हुई थी कि साधनाकी शैली क्या हो, जिससे सारा जीवन श्रीकृष्णमय बन जाये।

इस प्रकारके विचार-जिज्ञासा-उत्कण्ठा-त्वरा आदिके भावोंमें बाबाका मन निमग्न था कि बाबाने एक रात स्वप्न देखा। स्वप्नमें बाबाने यह देखा कि माँ (बाबूजीकी धर्मपत्नी) मेरे सामने खड़ी हैं। माँके पार्थिव शरीरमें विचित्र परिवर्तन हो गया है। वह शरीर अब साधारण नहीं रहा। साधारण पाञ्चभौतिक शरीरके स्थानपर वह असाधारण दिव्य शरीरके रूपमें परिणत हो गया है। माँके दिव्य शरीरसे अत्यधिक तेज विकीर्ण हो रहा है। शरीरके रोम-रोमसे दिव्य प्रकाश निकल रहा है। उस तेजपुञ्ज ज्योतिर्मय शरीरको देखकर यही लग रहा था, मानो ये ही आद्याशक्ति भगवती जगदम्बा हैं। इसीके साथ-साथ बाबाको यह भी दिखलायी दिया कि मैं एक बहुत छोटे बालकके रूपमें हो गया हूँ। बाबा इस प्रकारसे स्वयंको और माँको देख रहे थे। यह देखते-देखते आगे यह हुआ कि दिव्य स्वरूपा माँने उस बहुत छोटे बालकको अपनी गोदमें उठा लिया और अपने वक्षःस्थलसे चिपका लिया। इससे थोड़ी देर बाद माँने एक सघन-सुन्दर कुञ्जकी ओर संकेत किया। वेलि-विटपोंसे निर्मित यह हरा-भरा कुञ्ज थोड़ी ही दूरपर स्थित है। उस कुञ्जके वितानके नीचे बाबूजी (श्रीपोद्दारजी महाराज) विराज रहे हैं। जब माँ उस कुञ्जकी ओर अँगुलीसे संकेत कर रही थी, तभी बाबाकी नींद खुल गयी।

इस स्वप्नको देखकर बाबाको प्रसन्नता हुई। बाबाको लगा कि यह स्वप्न किसी मंगलका परिचायक है, पर वे समझ नहीं पाये कि इस स्वप्नका अर्थ क्या है। बाबाकी भावना ऐसी थी कि एक-दो दिनके अन्दर कोई शुभ प्रसंग घटित होना चाहिये। क्रमशः ये एक-दो दिन भी निकल गये। एक-दो दिनके स्थानपर कई दिन निकल गये। फिर तो वह स्वप्न भी विस्मृत हो गया। जिज्ञासासे भरे हुए मनमें उस स्वप्नकी स्मृति भला कबतक बनी रहती!

बाबाका मन साधना-सम्बन्धी अनेक समस्याओंका आगार बना हुआ था। बाबाके कथनानुसार वे समस्याएँ ऐसी थीं, जो केवल उसीसे सुलझ सकती थीं, जिसके जीवनमें व्रजभावकी साधनाकी सिद्धावस्था पूर्ण रूपसे उतर आयी हो। मात्र अध्ययनके आधारपर उन समस्याओंका हल दिया ही नहीं जा सकता था। निर्ग्रन्थ बाबाकी इस कठिन ग्रन्थिको खोलनेमें ग्रन्थ भी असमर्थ थे। ग्रन्थिकी कठिनताको देखकर ग्रन्थावलोकन भी पंगु हो रहा था। एक ओर व्रजभावके सैद्धान्तिक पक्षकी जिसे सम्यक् जानकारी हो और दूसरी ओर व्रजभावकी साधनाकी सिद्ध-स्थितिपर जो आरूढ़ हो, ये दोनों तथ्य जिसके जीवनके अंग हों, एक मात्र उस महान विभूतिसे उन समस्याओंका समाधान मिल सकता था। शास्त्रके अवलोकन-अध्ययनसे वे प्रश्न हल नहीं हो सकते, विचार-शक्ति भी उन समस्याओंको सुलझा नहीं पाती। वह प्रश्न तो एक मात्र सरल हो सकता है सिद्ध गुरुकी अहैतुकी कृपासे ही, पर जो वस्तुतः सिद्ध है, वह अपनेको सिद्ध बतलानेके लिये व्यक्त होगा नहीं और व्यक्त-स्तरपर जो अपनेको सिद्ध घोषित करते हैं, उनमेंसे शायद ही कोई विरला सिद्ध हो। बाबाके सामने भी कुछ ऐसी समस्या थी, जिसका समाधान वे पाना चाहते थे, पर कोई उपाय था नहीं। अब बाबाको दिन-रात, जागते-सोते, चलते-फिरते, उठते-बैठते निरन्तर यही चिन्तन बना रहता था कि इन जिज्ञासाओंका समाधान कैसे प्राप्त होगा। कोई महान विभूति गुरुपद स्वीकार कर ले तो अटकी हुई बात बन जाये। बाबाका मन बड़ा आकुल था कि 'तथा कथित' गुरुओंसे यह काम बननेवाला है नहीं और सिद्ध गुरुचरणोंकी कृपाकी उपलब्धि कैसे हो?

ये सारी बातें सन् १९३९ ई. के जून मासकी अथवा इसके आस-पासकी हैं। इन दिनों बाबा गीतावाटिकामें पीछेकी एक कुटियामें रहा करते थे। गीतावाटिकामें अब जहाँ श्रीनारद-मन्दिर है, इस मन्दिरकी ठीक दक्षिण-दिशामें यह कुटिया थी, तीन या चार फीटतक ईंटकी दीवाल और दीवालके ऊपर काठके पटरोंका छाजन। कुटियाके बाहर था एक हैंड-पाइप, जहाँ बाबा स्नान किया करते थे। कुटिया इतनी छोटी थी कि कठिनाईसे दो व्यक्ति लेट पायेंगे। अब यह कुटिया नहीं रह गयी है। इसके स्थानपर आजकल तुलसी-चबूतरा बना हुआ है। मनमें वैचारिक

द्वन्द्व बहुत बढ़ जानेसे बाबा एक दिन सचिन्तावस्थामें अपनी कुटियाके बाहर बैठे हुए थे कि वहीं पूज्य बाबूजी आये। बाबाको चिन्तित देखकर बाबूजीने पूछा – आप कैसे बहुत विचार-मग्न बैठे हुए हैं?

बाबाने कहा – श्रीकृष्ण-प्रेमकी साधनाकी दृष्टिसे मेरी जो स्थिति है, उन सब बातोंको एक मात्र आप समझ सकते हैं। अब कुछ ऐसी बातें सामने आ गयी हैं कि जिनका निराकरण किसी समर्थ गुरुकी कृपाके बिना नहीं हो सकता। जिनका व्रजभावमें वस्तुतः प्रवेश है, वे समर्थ जन अपनेको गुरु बतायेंगे नहीं और बिना गुरु-कृपाके मेरी बात बनेगी नहीं। न जाने कितने दिनोंसे मैं इसी उधेड़-बुनमें पड़ा हुआ हूँ। चित्त विविध प्रकारके चिन्तनके झंझावातसे भरा हुआ है।

बाबूजीने पूछा – आपकी उलझन क्या है?

बाबाने निवेदन किया – आप सब प्रकारसे समर्थ हैं, पर आप तो गुरुपद स्वीकार करेंगे नहीं। मेरी यह धारणा है कि आप किसीको अपना शिष्य बनाते नहीं। जहाँतक मेरी उलझनकी बात है, मुझे ऐसा नहीं लगता कि बिना गुरु वरण किये मेरी समस्या हल हो जायेगी।

बाबूजीने विनम्रता भरे शब्दमें कहा – यह मैंने कब कहा कि मैं किसीको शिष्य बनाऊँगा ही नहीं?

तब बाबाने कुछ आश्वस्त होकर और कुछ विस्मित होकर उत्सुकतापूर्वक पूछा – क्या आप मेरे लिये गुरु-पदको स्वीकार कर लेंगे?

बाबूजीकी आँखोंमें मौन एवं विनम्र स्वीकृति झलक रही थी। बाबाकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। बाबूजीने कहा – आप अपनी दोनों हथेलियोंको फैलाइये।

बाबाने अपनी दोनों हथेलियाँ फैला दी।

बाबूजीने कहा – हथेलियोंको उलट दीजिये, जिससे नख ऊपर हो जायें।

बाबाने अपनी हथेलियाँ उलटी कर दी। बाबूजीने अपनी एक अँगुलीसे बाबाकी दसों अँगुलियोंके दसों नखोंका क्रम-क्रमसे स्पर्श किया। इस स्पर्शका चमत्कारी प्रभाव यह था कि बाबाका वैचारिक द्वन्द्व तत्क्षण शान्त हो गया। बाबाका अन्तर्हृदय दिव्य आशा और उमंगसे परिपूरित हो उठा। बाबाके मनकी स्थिति ऐसी हो गयी मानो 'मरन सीलु जिमि पाव पिऊषा। सुरतरु लहै जनम कर भूखा।।' बाबूजीके प्रति बाबाके हृदयका

भाव उमड़ रहा था, आज बाबाको अपार आनन्द हो रहा था। 'सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया।' बाबाको उसी समय कुछ दिनों पूर्व देखे हुए उस स्वप्नकी स्मृति हो आयी, जिसमें पूज्या माँने कुञ्ज-स्थित बाबूजीकी ओर संकेत किया था। अब समझमें भी आ गया कि माँके उस संकेतका अर्थ क्या था? तब बाबा संकेतके भावको ग्रहण नहीं कर पाये थे, अन्यथा संकेत तो पहले ही मिल गया था कि सभी समस्याओंका समाधान कहाँ है?

यहीं पर एक और तथ्य उल्लेखनीय है। बाबूजीसे दीक्षा मिली, उससे पहले कई दिनोंतक बाबाको एक और अनुभव हुआ करता था। एक बार बाबाने स्वयं बतलाया था – श्रीपोद्दार महाराजसे दीक्षा मिलनेके पूर्व मेरे द्वारा भगवान श्रीकृष्णकी आराधना मानसिक रूपसे हुआ करती थी। मानसिक आराधना करते समय जब मैं पुष्प भगवान श्रीकृष्णके मस्तकपर चढ़ाता तो मेरे मानसिक नेत्रोंको एक दूसरा ही दृश्य दिखलायी दिया करता था कि पुष्प भगवान श्रीकृष्णके मस्तकपर न चढ़ करके श्रीपोद्दार महाराजके मस्तकपर चढ़ जाया करते हैं। मैं तो चढ़ाता था भगवान श्रीकृष्णके मस्तकपर, किन्तु वे श्रीपोद्दार महाराजके मस्तकपर चढ़े हुए दिखलायी देते थे। इस अनुभवका वास्तविक रहस्य भी खुला दीक्षा मिलनेके उपरान्त।

बाबूजीद्वारा गुरु-पद स्वीकार कर लिये जाते ही बाबाके मनमें दृढ़ आस्था हो गयी कि अब रसोपासनाका पथ सदाके लिये पूर्ण रूपसे प्रशस्त हो गया। बाबाने समय-समयपर कई बार इस प्रकारके मनोभाव व्यक्त किये हैं – साधनाके क्षेत्रमें समर्थ गुरुके श्रीचरणोंकी कृपाकी आवश्यकता पड़ा करती है, जिससे पथकी सारी बाधाएँ दूर हो जायें। मेरे जीवनमें ऐसी गूढ़ समस्याएँ उठ खड़ी हुई थीं, जिसका समाधान व्रजरसमें पगे हुए किसी रसिक संतको गुरु रूपमें वरण करनेपर ही सम्भव था। श्रीपोद्दार महाराजके जीवनमें किसीको भी शिष्य न बनानेका अति दृढ़ आग्रह होनेके बाद भी मेरे मनकी कुण्ठा और खिन्नताको उन्होंने अपनी अन्तर्भेदी दृष्टिसे जान लिया और स्वयं ही मेरे गुरु-पदपर प्रतिष्ठित होकर सारी समस्याओंको सदाके लिये दूर कर दिया।

ज्यों ही बाबूजी बाबाके पाससे गये, इसके थोड़ी देर बाद ही

बाबाके चिन्तनकी धाराने एक नया मोड़ लिया। बाबा सोचने लगे – क्या वस्तुतः श्रीपोद्दार महाराज मेरे पास आये थे? मैं नहीं कह सकता कि मेरे सामने श्रीपोद्दार महाराज वस्तुतः आये अथवा नहीं आये, पर सच बात यह है कि वे तो मेरे लिये आये ही थे। मेरी स्थिति उस समय न तो जाग्रतकी थी, न स्वप्नकी थी, न तन्द्राकी थी। क्या स्थिति थी, मैं बता नहीं पा रहा हूँ, पर मेरे लिये श्रीपोद्दार महाराज सचमुच आये।

बाबाको कुछ-कुछ ऐसा लगा कि श्रीपोद्दार महाराज अपने सूक्ष्म स्वरूपसे मेरे पास आये थे। बादमें कुछ छानबीन और पूछताछ करनेपर बाबाके मनकी इसी संभावनाका परिपोषण हुआ और बाबाकी सुदृढ़ मान्यता हो गयी कि श्रीपोद्दार महाराजने सूक्ष्म शरीरसे पधार करके मेरे गुरु-पदको स्वीकार किया है।

बाबाने बतलाया – स्पर्शकी क्रियाके समाप्त होते ही श्रीपोद्दार महाराजने हँसते हुए कहा कि लीजिये हो गया। इस प्रकारसे कह करके फिर वे हँसते हुए चले गये। उनके स्पर्शने चमत्कार कर दिया। मेरी सारी उलझन तत्काल समाप्त हो गयी। मेरे सारे प्रश्न हल हो गये, स्वतः हल हो गये। भविष्यमें फिर मेरे लिये कोई प्रश्न, कोई समस्या रही ही नहीं। उनके उस स्पर्शका प्रभाव है कि आज कोई भी, कैसी भी समस्या, व्रजभावकी साधनासे सम्बन्धित मेरे सामने रखे, उस समस्याका हल तुरन्त स्फुरित हो उठता है। यह सर्वथा सत्य बात है कि समर्थ गुरुकी कृपाका आश्रय मिलते ही सारे प्रश्न हल हो जाते हैं। ऐसे कृपाश्रितकी स्वयंकी सारी समस्याएँ तो दूर होती ही हैं, इसके अतिरिक्त समर्थ गुरुकी वह कृपा आश्रित जनको इतना सामर्थ्य प्रदान कर देती है कि वह दूसरोंकी समस्याओंको भी दूर कर सके। वह कृपाश्रित स्वयं तो तरता ही है, दूसरोंको भी तार देता है। इसी क्षमताकी ओर देवर्षि श्रीनारदने अपने भक्ति-सूत्रमें एक सूत्रके द्वारा संकेत किया है –

'स तरति स तरति स लोकांस्तारयति'

* * * * *

रसोपासना में निमग्नता

बाबाको साधना सम्बन्धी जिज्ञासाओंका समाधान कैसे प्राप्त हुआ, इसके बारेमें बाबाने कई बार बतलाया है। जिस समय ये जिज्ञासाएँ उत्पन्न हुई थीं, उस समय अंगीकृत नियमोंके कारण बाबा गीतावाटिकाके बाहर जा नहीं सकते थे। ऐसी भी सम्भावना नहीं थी कि समाधान प्रदान करनेके लिये बाहरसे कोई व्यक्ति गीतावाटिकामें आयेगा। एक बात और थी। बाबाकी तार्किकता बड़ी प्रखर थी। किसी अच्छे व्यक्ति द्वारा बता दिये जाने मात्रसे भी बाबाका समाधान होनेवाला नहीं था। जहाँ सिद्धान्तकी बात आती, वहाँ बाबाकी बुद्धि विवेचन-विश्लेषणमें प्रवृत्त हो जाती। बाबाकी आप्त वाक्योंमें आस्था थी, ये वाक्य यदि औपनिषदिक अथवा पौराणिक हों तो और भी सुन्दर, परंतु ऐसा प्रामाणिक तथ्योद्घाटन कहाँ मिलेगा? बाबाके मनमें बड़ा वैचारिक द्वन्द्व था। साधनाको आरम्भ करनेके पहले मानसिक द्वन्द्वका दूर होना आवश्यक था।

बाबाका नियम था कि चौबीस घंटेमें एक बार बाबूजीका दर्शन अवश्य कर लेना चाहिये। अपने नियमके अनुसार बाबा बाबूजीके दर्शनके लिये गये हुए थे। दोपहरका समय था। बाबा बाबूजीके पास बैठे हुए थे। उस समय बाबूजी बाबाको पद्मपुराणकी कुछ बातें सुनाने लगे। इसके बाद बाबूजीने कहा – आप पद्मपुराणका यह अंश पढ़ लीजिये। पद्मपुराणके पाताल खण्डमें सुन्दर-सुन्दर बातें हैं।

बाबा पद्मपुराणके विशाल ग्रन्थको अपनी कुटियापर ले आये और वह अंश पढ़ने लगे। बाबाने पाताल खण्डमें गोपी-जन-चितचोर भगवान श्रीगोविन्दके सच्चिदानन्द स्वरूप, नित्य कैशोर्य, लोकोत्तर माहात्म्य, महान ऐश्वर्य, गूढ़ रहस्य आदिका वर्णन पढ़ा। इसीके साथ श्रीकृष्ण-वल्लभा श्रीराधाके गूढ़ तत्त्व और उनकी दिव्य लीला भी पढ़नेको मिली। इन्हीं पृष्ठोंपर भगवती श्रीराधाकी अनन्य सखियोंकी प्रेममयी सेवा-परायणताका और अक्षयानन्दमय प्रेमधाम वृन्दावनका भी वर्णन था। दिव्य वृन्दावनमें सिंहासनासीन भगवान श्रीकृष्णके ध्यानका वर्णन तो अतीव सुन्दर था। इन सबको पढ़कर बाबाको यही लगा कि मैं जो खोज रहा था, वही यहाँ मिल गया। पद्मपुराणके कुछ अंश तो ऐसे सुन्दर

मिले, जो बाबाकी साधनाके मूलाधार बन गये। इसीमें बाबाको एक ऐसा अष्ट-कालीन लीलाका अत्यन्त सुन्दर क्रम प्राप्त हो गया, जिसके लिये बाबाके मनमें बड़ी अभिलाषा थी। बाबाको अत्यन्त विस्मय हो रहा था कि आज तो श्रीपोद्दार महाराजकी सर्वज्ञता-शक्ति किंचिदंशमें प्रकाशित हो उठी, जो उन्होंने मेरे मनकी आकुलतापूर्ण द्वन्द्वात्मक स्थितिको समझकर मेरे लिये पठनीय अंशकी ओर निर्देश कर दिया।

बाबूजीके दैन्यकी ओर संकेत करते हुए बाबाने एक बार कहा था – श्रीपोद्दार महाराजने ऐसा कभी नहीं चाहा कि मैं बतलानेवाला बनकर अपनी श्रेष्ठता स्थापित करूँ। यह क्षुद्र वृत्ति उनमें कभी जगी ही नहीं। वे बातें श्रीपोद्दार महाराज स्वयं भी बतला सकते थे, परंतु आत्म-संगोपन-भावकी प्रबलताके कारण उन्होंने बतलानेके स्थानपर पठनीय अंश दिखला दिया। इतना ही नहीं, मेरे मनके समाधानके लिये उन्होंने वही प्रक्रिया अपनायी, जो मेरी रुचिके और प्रकृतिके सर्वथा अनुकूल थी।

फिर बाबूजी द्वारा लिखित 'पुरुषोत्तम तत्त्व' नामक एक लेख बाबाको पढ़नेके लिये मिला। इस लेखमें पद्मपुराणकी मान्यताका ही प्रतिपादन करते हुए प्रकृति और पुरुषके वास्तविक स्वरूपको विस्तार पूर्वक बतलाया गया है। सांख्य दर्शनमें वर्णित प्रकृति-पुरुषका स्वरूप क्या है, श्रीमद्भगवद्गीतामें वर्णित प्रकृति-पुरुषका स्वरूप क्या है, वेदान्त दर्शनके आधार-भूत सिद्धान्तोंका स्वरूप क्या है, इन सबका तुलनात्मक विवेचन करते हुए इस लेखमें बाबूजीने यही बतलाया है कि परमाद्या प्रकृति भगवती श्रीराधासे समन्वित शुद्ध-पूर्ण-ब्रह्म-कारणरूप भगवान श्रीकृष्ण ही परम पुरुषोत्तम हैं। इस लेखसे बाबाको इतना अधिक परिपोषण और प्रोत्साहन मिला कि यह 'पुरुषोत्तम तत्त्व' लेख बाबाके नित्य पाठका अंग बन गया। बाबूजीके गुरुपदपर प्रतिष्ठित होते ही तथा मनकी जिज्ञासाओंका समाधान मिलते ही जो होना चाहिये था, वही हुआ। सारे अभाव दूर हो गये। कोई प्रतिबन्धक रहा ही नहीं। बाधारहित होकर बाबा रसोपासनामें प्रवृत्त हो गये। श्रीराधा-तत्त्व क्या है, श्रीकृष्ण-तत्त्व क्या है, श्रीवृन्दावनका स्वरूप क्या है, इन सब रहस्योंका मर्म खोल दिया पद्मपुराणने और उस प्राप्त ज्ञानको अत्यधिक परिपुष्ट कर दिया बाबूजीके 'पुरुषोत्तम तत्त्व' नामक लेखने। बाबाको

लीला-चिन्तनके लिये अष्टकालीन लीलाक्रम भी प्राप्त हो गया था। अब बाबा तत्परतापूर्वक अपनी रसोपासनामें संलग्न हो गये।

इन दिनों बाबाकी रसोपासनाका मुख्य आधार और प्रेरक ग्रन्थ था पद्मपुराण। इस पुराणके पाताल खण्डमें भगवान शंकरने कहा है –

यथा प्रकटलीलायां पुराणेषु प्रकीर्तिताः।
तथा ते नित्यलीलायां सन्ति वृन्दावने भुवि।।

(श्रीकृष्ण, उनका परिकर और विहार जिस प्रकार भूमण्डलके वृन्दावनकी प्रकट लीलामें पुराणोंद्वारा वर्णित है, उसी प्रकार नित्य लीलामें है।)

जैसे प्रकट-लीलामें भगवान श्रीकृष्ण विहार करते हैं, वैसे ही नित्य-लीलामें करते हैं और उनकी नित्य-लीला नित्य चलती ही रहती है, भगवान शंकरके ये वचन बाबाके हृदयमें पैठ गये। बाबा सोचने लगे – आज भी और इस समय भी, इस क्षण भी वे लीला कर रहे हैं, पर वह लीला मुझे दिखलायी नहीं देती। भगवान शंकर मिथ्या नहीं कहेंगे। भगवान शंकरने जो कहा, वह सर्वथा सत्य कहा है कि लीला नित्य-निरन्तर हो रही है। बस, यह मेरी अपात्रता है कि उस लीलाके दर्शन मुझे नहीं हो रहे हैं।

इसी पातालखण्डमें देवर्षि नारद द्वारा जिज्ञासा किये जानेपर वृन्दादेवीने श्रीराधाकृष्ण युगलकी सेवाके लिये लीलाका क्रम बतलाया है। इस लीलाक्रमके सम्बन्धमें भगवान शंकरने कहा है –

आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोहराम्।
रूपयौवनसम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम्।
इत्यात्मानं विचिन्त्यैव तत्र सेवां समाचरेत्।
ब्राह्मं मुहूर्तमारभ्य यावत्स्यात्तु महानिशा।।

[वहाँ उन (अनुचरियों सहित श्रीप्रिया-प्रियतम) के मध्य स्वयंका चिन्तन करें एक रूप-यौवन-सम्पन्ना मनोहरा किशोरी व्रजांगनाकृतिके रूपमें और इस प्रकार आत्म-स्वरूपका विचिन्तन करते हुए ब्राह्म मुहूर्तसे लेकर मध्य रात्रितक सेवा करनी चाहिये।]

अपनेको मनोहर प्रमदाकृतिके रूपमें भावना करके तब इस लीलाके द्वारा सेवा करनी चाहिये, इस भगवद्वाणीसे बाबाकी भाव-धाराको बड़ा परिपोषण मिला। यह मनकी भावनाओंका अनुमोदक था। सन् १९३७ में गोपी-वपुकी एक झलक मिल ही चुकी थी। पद्मपुराणके आधारपर अष्टकालीन लीला-क्रमका अनुसरण करते हुए बाबाने गोपी-भावसे

श्रीराधाकृष्णकी मानसिक रसमयी सेवा आरम्भ कर दी। तीन लाख नाम जप, कुछ पाठ तथा मानसिक सेवा, यही बाबाकी साधनाका इन दिनों मुख्य स्वरूप था। सन् १९३९ के अक्टूबर-नवम्बर मासमें जब बाबा बाबूजीके साथ दादरीमें निवास कर रहे थे, तब बाबाकी साधनामें फिर एक मोड़ आया। बाबाके मनमें श्रीरामचरितमानसकी एक चौपाई बार-बार उभरने लगी।

एकइ धर्म एक व्रत नेमा।काय बचन मन पति पद प्रेमा।।

जिसका जीवन समर्पित होता है, उसके लिये एक ही धर्म, एक ही व्रत, एक ही नियम होता है तनसे-मनसे-वचनसे पति-पद-प्रेम करना। बाबा अपने मनमें चिन्तन करने लगे – मेरे पास गोपी-शरीर तो है नहीं, पर मन है और वाणी है। मनसे मानसिक सेवा यथा-शक्ति सम्पन्न होती है, पर वाणीका विनियोग कैसे करूँ, जिससे भगवान श्रीकृष्णकी प्रसन्नता मिले। परम पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्णको अपनी (परमाद्या प्रकृति) परमाराध्या प्राण-प्रियतमा भगवती श्रीराधाका नाम अत्यन्त प्रिय है, अतः उनकी प्रसन्नताके लिये 'राधा' नामका जप मैं क्यों न करूँ? इसी प्रकार भगवती श्रीराधाको अपने (परम पुरुषोत्तम) प्राण-प्रियतम श्रीकृष्णका नाम अत्यन्त प्रिय है, फिर तो 'कृष्ण' नामका भी जप करना चाहिये।

बाबाके मनमें यह भाव इतना अधिक छा गया कि सोलह नामवाले महामन्त्रका जप छूट गया और बाबाने 'राधा-कृष्ण' 'राधा-कृष्ण'का जप आरम्भ कर दिया। ब्रह्मवैवर्त पुराणके एक श्लोकको पढ़कर बाबाकी 'राधा' नामके प्रति श्रद्धा अत्यधिक बढ़ गयी। भगवान श्रीकृष्णने अपनी प्राणेश्वरी श्रीराधाके प्रति कहा है कि जो 'रा' अक्षरका उच्चारण करता है, उसे तो मैं अपनी उत्तमा भक्ति प्रदान कर ही देता हूँ, पर जो इसीके साथ 'धा' का उच्चारण करता है, उच्चारणके होते ही मैं उसके पीछे-पीछे चलने लगता हूँ। ब्रह्मवैवर्त पुराणोक्त इस महिमाने बाबाके मनको 'राधा' नामके प्रति अत्यधिक श्रद्धावान बना दिया। अब 'राधा-कृष्ण' नामका निरन्तर जप और मुखसे जब-तब 'राधा', 'राधा', नामका उच्चारण परम श्रद्धालु बाबाकी साधनाका महत्त्वपूर्ण अङ्ग बन गया।

* * * * *

'मञ्जुलीला' भावमें प्रतिष्ठा

एक बार मानसिक सेवाका चाव बाबाके मनमें बहुत अधिक बढ़ गया। तब बाबाके अन्तरमें ऐसा विचार उठा – खग और मृग भी तो श्रीप्रिया-प्रियतमकी सेवा करते हैं। व्रजांगनाकृतिके स्थानपर खगाकृति अथवा मृगाकृति स्वीकार करनेपर सम्भवतः सेवाका अवसर अधिक मिले। यदि मैं तोता बन जाऊँ और शुक-शरीरसे सेवा करूँ तो कैसा रहे? यह तो सुन्दर ही होगा यदि मैं शुक-भावसे श्रीप्रिया-प्रियतमकी सेवा करते हुए उन दिव्य युगलको सुख पहुँचाऊँ, परंतु एक बाधा है। तोता तो पुरुष-शरीर है। यह तो अन्तरंग सेवाके लिये उपयुक्त नहीं। फिर क्यों नहीं मैं सारिका-शरीरसे सेवा करूँ? सारिका तो स्त्री-शरीर है।

बाबाको सारिका-भाव जँच गया और उनके मनने इस भावको पकड़ लिया, पर यह भाव भी बहुत दिनोंतक स्थिर नहीं रह सका। कुछ दिनों बाद यह भाव भी शिथिल होकर शमित हो गया। पुनः भगवान शंकरके वचन मनपर छा गये कि स्वयंको गोपी-रूपमें भावना करके श्रीप्रिया-प्रियतमकी मानसिक सेवा करनी चाहिये। बाबाका वह सारिका-भाव तिरोहित हो गया और उन्होंने गोपी-भावसे प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णकी अष्टकालीन मानसिक सेवा आरम्भ कर दी। यह मानसिक सेवा पद्मपुराणके पाताल खण्डके तिरासिवें अध्यायके अनुसार थी। इसी सेवा-भावनाको संक्षेपमें बाबाने हिन्दीमें भी लिखा जो, 'प्रेम सत्संग-सुधा-माला'* पुस्तकके ७६ वें मणिमें प्रकाशित है।

गौड़ीय साहित्यके लिये बाबाके हृदयमें बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्णकी रसमयी सेवाकी दृष्टिसे बाबाके हृदयमें जो भाव अपने आप उदित हुए थे, उन भावोंको गौड़ीय साहित्यसे बड़ा समर्थन मिला। गौड़ीय साहित्यके अवलोकन-अध्ययनसे बाबाको विश्वास हो गया कि मेरे अन्दर भावोंका जो स्वतः और सहज प्रवाह है, वह सही है। मञ्जरी-भावसे श्रीराधाकृष्णकी सेवा करनेकी जो पद्धति बाबाने अपना रखी थी, गौड़ीय साहित्यके पठनके परिणामस्वरूप बाबाके मनकी आस्था उस पद्धतिके प्रति सुदृढ़ होती चली गयी।

---

*'प्रेम सत्संग-सुधा-माला' पुस्तक गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित है।

भगवान शंकरके वचन 'आत्मानं चिन्तयेत्तत्र तासां मध्ये मनोहराम्'के अनुसार बाबा स्वयंकी एक अति मनोहरा-मनोरमा राधानुचरीके रूपमें भावना करते हुए श्रीयुगल सरकारकी सेवा करते। यह सब बाबाके द्वारा होता, परंतु उस भावनाका तथा सेवाका जो उत्कृष्ट आदर्श रूप बाबाके मनपर अंकित था, वह जीवनमें प्रतिष्ठित नहीं हुआ था। इन दिनों बाबाके मनकी दशा बड़ी विचित्र थी। मानसिक सेवाका आदर्श स्वरूप जीवनमें चरितार्थ हो जाये, इस दृष्टिसे कभी आशा, कभी निराशा, कभी व्याकुलता, कभी तत्परता, कभी आत्माहुति, कभी सर्वस्वार्पण आदि-आदि अनके प्रकारके भावोंसे बाबाका मन आप्लावित रहता। बाबा निरन्तर यही सोचते – वह दिन कब होगा, जब मेरे व्यक्तित्वका अस्तित्व रह जायेगा मात्र उनकी सेविकाके रूपमें। मैं क्या करूँ, कैसे करूँ, जिससे मात्र राधानुचरीके रूपमें मेरी स्मृति शेष रह जाये। मानसिक सेवा करते समय जिस तरह मैं श्रीराधारानीके समीप हूँ, यह सामीप्य सदाके लिये स्थायी बन जाये। फिर यह शरीर रहे अथवा न रहे। तब तो इस शरीरके रहते हुए भी इसी जीवनकालमें राधारानीके सर्वथा समीप और जीवनके उस पार चले जानेपर भी श्रीराधारानीके सर्वदा समीपवाली स्थिति बनी रहेगी। नित्य-निरन्तर श्रीराधारानीका सामीप्य रहेगा। राधानुचरीके रूपमें श्रीराधारानीका नित्य सांनिध्य और उनकी नित्य सेवा, ऐसा कब होगा?

बाबाको एक बार श्रीमद्भागवतका एक श्लोक याद आ गया। भगवानने सनकादिकोंसे कहा है –

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेन्यैरपीन्द्रियैः।
अहमेव न मत्तोन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा।।

(भागवत/११/१३/२४)

(मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे जो कुछ भी ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ। मुझसे भिन्न और कुछ नहीं है। यह सिद्धान्त आप लोग तत्त्वविचारके द्वारा समझ लीजिये।)

बाबा भी इसी तत्त्वको पूर्णतः स्वीकार करते थे कि यह दृश्य जगत और इस जगतकी सभी दृश्य वस्तुओंके रूपमें श्रीकृष्ण ही हैं, पर बाबाको यह रूप अभीष्ट नहीं था। बाबाको तो चरमान्तर्मुखीवाला रूप चाहिये था। नारायण स्वामीने कहा भी है –

सुनूँ न काहू की कही, कहूँ न अपनी बात।
नारायण वा रूप में, छकी रहूँ दिन रात।।

जब मनकी व्यथा बहुत बढ़ गयी तो बाबाके अधरोंसे प्रार्थना फूट पड़ी – जगतका यह रूप मेरे सामनेसे हटा लो नाथ! न जगतका यह रूप मेरे सामने रहे और न अन्य किसीकी स्मृति किंचित् रहे। मेरे सामने रह जायें श्रीराधा और श्रीकृष्ण। गौराङ्गिनी श्रीराधा और नीलकलेवर श्रीकृष्ण सदा मेरे तन-मन-नयनमें बसे रहें और मात्र युगलानुचरीके रूपमें मेरा अस्तित्व बना रहे।

इस विकलताकी स्थितिमें प्रेरणा-ग्रन्थ पद्मपुराणके निम्नलिखित श्लोक बाबाके हृदयको स्पर्श कर गये –

ऐहिकामुष्मिकी चिन्ता नैव कार्या कदाचन।
ऐहिकं तु सदा भाव्यं पूर्वावरितकर्मणा।।
आमुष्मिकं तथा कृष्णं स्वयमेव करिष्यति।
सरःसमुद्रनद्यादीन्विहाय चातको यथा।।
तृषितो म्रियते चापि याचते वै पयोधरम्।
एवमेव प्रयत्नेन साधनानि विचिन्तयेत्।।

(साधकको ऐहिक अर्थात् लौकिक और आमुष्मिक अर्थात् पारलौकिक चिन्ता कभी नहीं करनी चाहिये। इस लोकके भोग तो सदा पूर्वकृत कर्मोंके अनुरूप प्राप्त होंगे ही और परलोककी चिन्ता स्वयं श्रीकृष्ण ही करेंगे। चातक भले प्यासके मारे मर जाये, पर सरोवर-समुद्र-सरितासे विमुख होकर वह जिस प्रकार एक मात्र मेघसे जलकी याचना करता है, उसी प्रकार प्रयत्न पूर्वक साधकको अपने साधनके सम्बन्धमें विचार करना चाहिये।)

बाबाके मनमें बड़ी विकलता थी, इसके बाद भी श्रीपद्मपुराणके निर्देशके अनुसार अपनी साधनामें सफलताके लिये बाबाने चातकी वृत्तिका आश्रय लिया। बाबाके मनमें एक ओर बड़ी विकलता और दूसरी ओर अखण्ड आशा थी – कभी तो वह सरस नीलघन सदय होगा ही।

और बाबाकी सच्ची निष्ठाको देखकर वह सजल नीलघन बरस पड़ा, बह चला। एक दिन परम स्नेहमयी गुरुस्वरूपा श्रीरूपमञ्जरीने बाबापर कृपा की और बाबाको बतलाया – जिस मञ्जरी भावसे तुम्हारे द्वारा श्रीयुगल-सेवा हो रही है, वह तुम वस्तुतः मञ्जुलीला मञ्जरी हो।

यही बाबाकी प्रथम 'भाव-दीक्षा' थी। यह दीक्षा सन् १९४० में सम्पन्न हुई। श्रीमञ्जुलीला भावमें प्रतिष्ठा होते ही बाबाके अन्तरमें आत्म-संगोपनकी प्रवृत्ति जाग उठी। अपने शरीरके कार्य तथा जगतके व्यवहारको सम्पन्न करनेमें बाबाको बड़ी अड़चनकी अनुभूति होती थी। लोगोंसे व्यवहार करते समय बाबाको आवश्यकतासे अधिक सावधान रहना पड़ता था। बहुत सतर्क रहनेके बाद भी सबल-भाव-स्थिति होनेके कारण बाबाके मुखसे पुरुषवाचक क्रियापदके स्थानपर स्त्रीवाचक क्रियापद निकल जाया करते थे। इस प्रकारकी अभिव्यक्तिके फलस्वरूप जब कभी उलझन पूर्ण परिस्थिति उत्पन्न हो जाया करती थी, तब उसे सँभालना भी बाबाके लिये बड़ा कठिन हो जाया करता था।

वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाके वाम कपोलपर कृष्णवर्णीय बिन्दु है। यह कृष्ण बिन्दु नासिका-पुटसे तनिक-सा हटकर कुछ ऊपरकी ओर है। इस बिन्दुके रूपमें श्यामवर्णीया श्रीमञ्जुलीलाका श्रीराधारानीके गौर अंगमें नित्य अवस्थान है। कभी तो उस बिन्दुमें विलीन होकर उससे बाबाकी एकात्मता स्थापित हो जाती और कभी उससे बाहर आकर श्यामवर्णीया श्रीमञ्जुलीला मञ्जरीके रूपमें स्थिति हो जाती। जबतक बाबा श्रीमञ्जुलीला भावमें रहे, तबतक विरह भावकी ही प्रधानता रही।

रसोपासनाके इन आरम्भिक वर्षोंमें बाबाको भक्त कवि श्रीसूरदासजीके तीन पद बहुत ही अधिक प्रिय थे। इन पदोंमें प्रेम-पथका, प्रेम-पथ-पथिकका, प्रेम-दशाओंका, प्रेम-निमग्नताका, प्रेमोन्मत्तताका और सच्चे प्रेमी जीवनका बड़ा ही हृदयस्पर्शी चित्रण है। यही तो बाबाके समक्ष प्रेम-पूर्ण-जीवनका एक आदर्श स्वरूप था। वे तीनों पद इस प्रकार हैं –

ग्वालिनि प्रगट्यो पूरन नेहु।
दधि भाजन सिर पैं लिए (हो), कहत गुपालहिं लेहु॥१॥
कौन सुनै, कासौं कहौं (हो), काकें सुरत संकोच।
काकौं डर पथ अपथ कौ (हो), को उत्तम, को पोच॥२॥
हाट बाट, प्रिय पुर गली (हो), जहाँ तहाँ हरिनाम।
समुझाएँ समुझैं नहीं (हो), वाहि सिख दै बिथक्यौ ग्राम॥३॥
पान किये जस बारुनी (हो), मुख भलकत, तन न सँभार।
पग डगमग इत उत परैं (हो), बिथुरी अलक लिलार॥४॥

दीपक ज्यों मन्दिर बरै (हो), बाहर लखै न कोय।
तृन परसत प्रजुलित भयो (हो), (अब) गुपुत कवन बिधि होय।। ५।।
सरिता निकट तड़ाग के (हो), दीनौ कूल विदारि।
नाम मिट्यौ, सरिता भयौ, (अब) कौन निबेरैं बारि।। ६।।
लज्जा तरल-तरंगिनी (हो), गुरुजन गहरी धार।
दोउ कुल कूल, परिमित नहीं (हो), वाहि तरत न लागी बार।। ७।।
बिधि भाजन ओछो रच्यौ (हो), लीला सिन्धु अपार।
उलटि मगन तामें भयौ (हो), (अब) कौन निकासनहार।। ८।।
चित आकर्ष्यो नन्द के (हो), मुरली मधुर बजाय।
जेहि लज्जा जग लजायो (हो), सो लज्जा गई लजाय।। ९।।
प्रेम मगन ग्वालिनि भई (हो), सूरदास प्रभु संग।
स्रवन नयन मुख नासिका ज्यौं, कंचुकि तजत भुजंग।। १०।।

* * *

कब की मह्यौ लिऐं सिर डोलै।
झूँठई इत उत फिर आवत, इहाँ आय यह बोलै।।
मुँह लौ भरी मथनियाँ तेरी, तोहि रटत भई साँझ।
जानति हौं गोरस को लेवा, याही बाखरि माँझ।।
इत तौ आय बात सुनि मेरी, कहें बिलग जिन मानै।
तेरे घर मैं तुही सयानी, और बेचि नहिं जानै।।
भ्रमतहिं भ्रमत भरमि गई ग्वारिनि, बिकल भई बेहाल।
सूरदास प्रभु अंतरजामी, आइ मिले गोपाल।।

* * *

नाहिन रह्यौ हिय मैं ठौर।
नंदनंदन अछत कैसे आनिये उर और।।
चलत चितवत दिवस जागत सुपन सोवत रात।
हृदय ते वह स्याम मूरति छिन न इत उत जात।।
कहत कथा अनेक ऊधौ लोक लाज दिखात।
कहा करौं तन प्रेम पूरन घट न सिंधु समात।।
स्याम गात सरोज आनन ललित गति मृदु हास।
सूर ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास।।

इन तीनों पदोंकी बाबाने बड़ी ही भावमयी व्याख्या विस्तार पूर्वक लिखी है। प्रथम दो पदोंकी व्याख्या 'चलौ री आज व्रजराज मुख निरखिये' पुस्तकमें प्रकाशित है और तृतीय पदकी व्याख्या 'प्रेम सत्संग-सुधा-माला' पुस्तकमें मणि-६७ में है। इन पदोंके अतिरिक्त श्रीनारायणस्वामी, श्रीगोविन्दस्वामी, श्रीवल्लभजी एवं श्रीहरिश्चन्द्रजीके निम्नलिखित पद भी बाबाको अत्यन्त प्रिय थे। ये चारों पद इस प्रकार हैं –

मोहन मुखारबिंद पर मनमथ कोटिक वारौं री माई।
जिहि जिहि अंगनि दृष्टि परति (है) तहँ तहँ रहत लुभाई।।
अलक तिलक कुंडल कपोल छबि, इक रसना मोपै बरनि न जाई।
गोबिंद प्रभु की बानिक ऊपर, बलि बलि रसिक चूड़ामनि राई।।

* * *

छिनहिं छिन सुरति होति री माई।
बोलनि मिलनि चलनि हँसि चितवनि प्रीति रीति चतुराई।।
साँझ समय गोधन सँग आवनि परम मनोहरताई।
रूप सुधा आनंद सिंधुमें झलमलात तरुनाई।।
अंग अंग प्रति मैन सैन सजि धीरज देत छुड़ाई।
उड़ि उड़ि लगत दृगनि टोना सो जग मोहनी कन्हाई।।
मरियत सोचि सोचि बिन बातनि हौं बन गहन भुलाई।
बल्लभ औचक आय मंद हँसि गहि भुज कंठ लगाई।।

* * *

पिय प्राननाथ मनमोहन सुन्दर प्यारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे।।
घनस्याम गोप-गोपी-पति गोकुल-राई।
निज प्रेमीजन-हित नित नित नव सुखदाई।।
बृन्दावन-रच्छक ब्रज-सरबस बल-भाई।
प्रानहुँ ते प्यारे प्रियतम मीत कन्हाई।।
श्रीराधानायक जसुदानन्द दुलारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे।।१।।

तुव दरसन बिनु तन रोम रोम दुख पागे।
तुव सुमिरन बिनु यह जीवन विष सम लागे।।
तुमरे सँयोग बिनु तन बियोग दुख दागे।
अकुलात प्रान जब कठिन मदन मन जागे।।
मम दुख जीवन के तुम हो इक रखवारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे।।२।।
तुम हीं मम जीवन के अवलम्ब कन्हाई।
तुम बिनु सब सुख के साज परम दुखदाई।।
तुव देखे ही सुख होत न और उपाई।
तुमरे बिनु सब जग सूनो परत लखाई।।
हे जीवनधन मेरे नैनों के तारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन सों न्यारे।।३।।
तुमरे-बिनु इक छन कोटि कलप सम भारी।
तुमरे-बिनु स्वरगहु महा नरक दुखकारी।।
तुमरे सँग बनहू घर सौं बढ़ि बनवारी।
हमरे तौ सब कुछ तुमही हौ गिरधारी।।
'हरिचन्द' हमारो राखो मान दुलारे।
छिनहूँ मत मेरे होहु दृगन तें न्यारे।।४।।

* * *

जाहि लगन लगी घनस्याम की।
धरत कहूँ पग परत कितैहू, भूलि जाय सुधि धाम की।।
छबि निहारि नहिं रहत सार कछु, निसि दिन पल-छिन-जाम की।
जित मुँह उठैं तितै ही धावै, सुरति न छाया घाम की।।
अस्तुति निंदा करौ भले ही, मैंड तजी कुल - गाम की।
नारायन बौरी भई डौलै, रही न काहू काम की।।

रसोपासनामें और रसमें सर्वथा आशिख निमग्न हो जानेकी आत्यन्तिक चटपटी-छटपटी जिनके हृदयमें क्षण-प्रति-क्षण मची हुई हो, ऐसे बाबाके लिये उन दिनों ये सारे पद सतत प्रेरणा-स्रोत रहे।

* * * * *

अपमान के क्षण

प्रसंग सन् १९४१ का है। एक बार पूज्य बाबूजीके साथ बाबा दिल्ली गये हुए थे और वहाँ श्रीमथुरानाथजीके यहाँ ठहरे थे। बाबासे पूज्य बाबूजीने बता रखा था कि टहलनेके लिये यमुनाजीके किनारे चले जाया करियेगा। जब बाबा टहलकर वापस आये और कोठीमें घुसने लगे तो पहरेदारने कड़ककर कहा – कहाँ जाता है?

बाबाने उसको कुछ विनम्र उत्तर दिया तो उसकी तेजी बहुत बढ़ गयी। बाबा जितनी शालीनता दिखलाते, उतना ही उसकी बोली अधिकाधिक कड़क होती जाती। वह तो बड़ा ताकतवर था, पर बाबा थे शारीरिक दृष्टिसे दुबले-पतले। बाबा वहीं चुपचाप खड़े रहे। बाबाको रह-रह करके पूज्य बाबूजीकी चिन्ता हो रही थी। बाबा तो यहाँ एकदम बाहरी गेटपर खड़े थे और कोठीके भीतरसे यदि श्रीमथुरानाथजी पूज्य बाबूजीको फोन कर देंगे कि अभीतक यहाँ बाबा नहीं आये हैं तो उनको चिन्ता हो जायेगी। यह समाचार पाकर वे स्वयं कार लेकर यमुनाके किनारे पहुँच जायेंगे। पता नहीं वे कितना परेशान होंगे। पूज्य बाबूजीको परेशानीसे बचानेके लिये बस, एक ही तरीका था कि बाबा किसी तरह कोठीके भीतर श्रीमथुरानाथजीके पास पहुँच जायें, पर पहुँचें कैसे? यह पहरेदार जो बाधक बना हुआ था। भीतर-ही-भीतर मन-ही-मन बाबाने एक योजना बनायी। बाबाको अपने बचपनकी याद आयी। जब बाबा विद्यार्थी थे, तब वे सेंटर-फार्वर्ड पोजिशनसे फुटबालके खिलाड़ी थे। बस, बाबाको वह अपना फुटबाल खेलना और तेज दौड़ लगाना स्फुरित होने लगा। बाबा माला जप रहे थे। बाबाने अपनी माला पूरी की। जपको पूरा करके उन्होंने मालाको अपनी टेंटमें खोंस लिया। फिर कपड़ोंको दौड़ लगानेकी दृष्टिसे समेट लिया, पर समेटा इस चुपचाप ढंगसे कि वह पहरेदार देख नहीं पाये। बाबा मन-ही-मन यह भी समझ रहे थे – भले यह पहरेदार मुझसे अधिक ताकतवर है, पर मेरा शरीर अधिक हल्का है तथा जितना तेज मैं दौड़ सकता हूँ, उतना तेज वह नहीं दौड़ सकता।

बाबा इस मौकेकी राह देख रहे थे कि आधे-एक मिनटके लिये यह पहरेदार किसी ओर हटे तो मैं तपाकसे कोठीके अन्दर भाग चलूँ।

थोड़ी देर बाद ही वह अवसर हाथ लग गया। किसी और व्यक्तिसे बात करनेके लिये वह पहरेदार एक मिनटके लिये गेटपरसे हटा। बाबा तो तैयार थे ही। उसी बीचमें बाबा कोठीके अन्दर भाग चले। कोठीमें घुसते देखकर पहरेदार अपनी लाठी लेकर बाबाके पीछे भागा, आगे बाबा, पीछे वह पहरेदार। बाबाका अनुमान सही था। वह बाबा जितना भाग नहीं पा रहा था। वह लपककर बाबाको पकड़ सके, इसके बहुत पहले ही बाबा कोठीकी गद्दीमें पहुँच गये। वहाँ श्रीमथुरानाथजी बैठे थे। भागकर आते हुए बाबाको देखकर उन्होंने अकचकाकर पूछा – क्या बात है? क्यों दौड़ रहे हैं?

बाबाने कहा – कुछ नहीं।

तबतक वह पहरेदार भी आ गया। पहरेदारने पूछा – यह साधु कौन हैं?

श्रीमथुरानाथजीने कहा – ये अपने ही हैं।

तब वह पहरेदार वापस चला गया।

* * *

अगला प्रसंग बिहार प्रदेश स्थित डेहरी-आन-सोनका है –

एक बार पूज्य बाबूजी, बाबा तथा श्रीजयदयालजी डालमिया दिल्लीसे सबेरे आठ बजे रेलगाड़ीसे रवाना होकर डेहरी-ऑन-सोन दूसरे दिन नौ बजे सबेरे पहुँचे। साथमें श्रीडालमियाजीका नौकर श्रीश्यामा भी था। नौ बजे पहुँचकर स्नान-शौच आदिसे तथा भिक्षासे निवृत्त होनेमें अपराह्नकालके चार बज गये थे। चार बजे बाबाने स्लेटपर लिखकर पूछा था – क्या कोई जगह टहलनेके लायक है?

पूछनेपर श्रीडालमियाजीने कहा – यहाँ पासमें नहर है। नहरके किनारे- किनारे टहला जा सकता है।

जिस दिशाकी ओर बतलाया गया था, बाबा उधर नहरके किनारे टहलने चले गये। इधर बाबा टहलने गये और उधर कोठीके दरबानकी बदली हो गयी। पहलेवाला दरबान विश्रामके लिये चला गया और उसके स्थानपर अब अपनी खुखरी लिये एक नेपाली गोरखा दरबान पहरा दे रहा था। ज्यों ही बाबा टहलकर लौटे और कोठीके मुख्य द्वारसे प्रवेश किया, त्यों ही उस नेपाली गोरखा दरबानने बाबाकी गर्दन पकड़कर

अति अभद्र गाली देते हुए सड़कपर दूर बैठा दिया। नेपाली गोरखा दरबान द्वारा ऐसा किये जानेपर भी बाबाके मनमें रंच मात्र भी विकृति या ऊँच-नीचका भाव नहीं आया। वही मुस्कान बाबाके चेहरेपर थी। बाबा गन्दे धूलि भरे स्थानपर बैठे थे। सामनेसे सैकड़ों बैलगाड़ियाँ, ईंख लादे हुए चली गयीं। बैलोंके खुरोंसे धूलि उड़-उड़ करके बाबाके ऊपर पड़ रही थी। लगभग आधा घण्टा हो गया। इस अवधिमें वह नेपाली गोरखा दरबान दो-तीन बार बाबाके पास आया तथा गाली देते हुए कहने लगा – यह साधु अभीतक यहीं बैठा है, हँसता है, जाता नहीं है।

जब वह पास आता तो बाबाको अपनी खुखरी दिखलाता, मानो पेटके अन्दर घोंप देगा। आधा घण्टे बाद वह श्यामा नौकर कोठीके बाहर निकला। उसने देखा कि बाबा बड़े गन्दे स्थानपर धूलिमें बैठे हैं। श्यामाने यही समझा कि ये बाबा भी कितने मूर्ख हैं? उनको यह भी ज्ञान नहीं है कि कहाँ बैठना चाहिये और कहाँ नहीं। श्यामा नौकरने जाकर बाबासे कहा – अरे राम! अरे राम! यह भी कोई बैठनेकी जगह है?

इतना कहकर वह श्यामा नौकर बाबाका हाथ पकड़कर कोठीके अन्दर ले गया। बाबा मन-ही-मन कहने लगे – इस श्यामाको मैं यह कैसे बताऊँ कि मैं स्वयं बैठा हूँ या किसीके द्वारा बैठाया गया हूँ।

कोठीके अन्दर प्रवेश करते समय बाबाने एक बार उस नेपाली गोरखा दरबानकी ओर एक नजर फेंककर देख लिया था। उसके तो चेहरेकी हवाइयाँ उड़ रही थीं। कोठीके भीतर दूबका सुन्दर मैदान था। श्यामाने एक और नौकर बुला लिया और उसकी सहायतासे बढ़िया सोफा कोठीके बरामदेमेंसे दूबके हरे मैदानमें लाकर रख दिया। इसके बाद उसने बाबाको उस सोफेपर बैठाया। थोड़ी देर बाद श्रीडालमियाजी आकर बाबाके चरणोंके पास दूबके मैदानमें बैठ गये। फाटकपर खड़े-खड़े वह नेपाली गोरखा दरबान यह सब देख रहा था। अब तो उसके होश गुम हो गये। उसको लगा कि आज बहुत बड़ी गलती हो गयी है और किसी बहुत बड़े साधुके प्रति मैंने बड़ा ही गलत काम कर दिया है। उसके मनके भाव उसके चेहरेपर झलक रहे थे और उसका चेहरा देखकर बाबा उसके भावोंकी आँधीको समझ भी रहे थे। बाबाका मौन चल रहा था। बाबाने स्लेटकी पट्टीपर लिखकर श्रीडालमियाजीसे कहा – मैं इस समय एकान्त चाहता हूँ।

श्रीडालमियाजी उठकर तुरन्त चले गये। उनके जाते ही वह नेपाली गोरखा दरबान घबराया हुआ बाबाके पास आया तथा घबरायी आवाजमें अपने एक हाथसे झुककर पूज्य बाबाके पैर छूते हुए कहने लगा – हम नहीं जानता था, हम नहीं जानता था।

फिर वह भागकर मुख्य द्वारपर चला गया, पर उसके भीतर चैन था नहीं। वह भागकर बाबाके पास आता था, माफी माँगता था और फिर भागकर वह मुख्य द्वारपर चला जाता था। इस प्रकार उसने तीन-चार बार किया। बाबा उसको सान्त्वना देना चाहते थे, पर दें कैसे? इधर तो बाबाका मौन था और उधर वह पढ़ना जानता नहीं था। अन्तमें बाबाने अपना मौन भंग करके उसको आश्वस्त किया – तुम चिन्ता मत करो, घबराओ नहीं, मैं किसीसे यह बात नहीं कहूँगा।

जब बाबाने इतना कहा, तब कहीं जाकर वह नेपाली गोरखा दरबान शान्त-चित्त हो सका।

* * *

एक और प्रसंग लखनऊ हवाई अड्डेका है –

बाबा और बाबूजी हवाई जहाजसे उतरे। अड्डेपर इन लोगोंको लेनेके लिये कार नहीं पहुँच पायी थी। पूज्य बाबूजीने पूछा – बाबा! अभीतक कार नहीं आयी है। मैं बाहर जाकर देखता हूँ कि क्या बात है। इधर हवाई जहाजसे अपना सामान उतरेगा। क्या उसे आप सँभाल लेंगे?

बाबाने बाबूजीसे कहा – मैं खड़ा-खड़ा सामान देखता रहूँगा।

पूज्य बाबूजी आवश्यक व्यवस्थाके लिये बाहर चले गये। बाबा खड़े-खड़े प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब हवाई जहाजसे सामान उतरकर आये और उसे अपने पास रखवा लूँ। बाबाको खड़े देखकर हवाई अड्डेका पोर्टर (कुली) आया और धक्का देकर बाबाको एक किनारे कर दिया। उसकी धारणाके अनुसार तो बाबा कोई उचक्का साधु ही था, जो किसी खराब नीयतसे वहाँ खड़ा था। बाबा फिर भी वहाँ चुपचाप निर्विकार खड़े रहे। जब सामान बाहर आने लगा तब बाबाने अँगरेजीमें कहा – यह सामान हमारा है।

बाबाके द्वारा इतना कहा जाना था कि वह कुली घबड़ाया। उसको डर लगा कि कहीं मेरे दुर्व्यवहारकी शिकायत न कर दी जाय। उसने क्षमा-याचना करते हुए कहा – मुझे पता नहीं था कि आप भी यात्री हैं।

बाबाने उसे आश्वासन दिया – मेरे द्वारा तुम्हारा कोई अहित नहीं होगा। मैं कोई भी शिकायत नहीं करूँगा।

जीवनमें घटित ऐसे कई प्रसंगोंको बाबा कभी-कभी सुनाया करते थे। इन कुछ घटनाओंको सुनाकर बाबा कहा करते थे – जबतक मनमें मान-अपमानके बोधकी भावना है, तबतक भगवद्दर्शन तो दूरकी बात है, हम स्वयंको आस्तिक कहलानेके भी अधिकारी नहीं हैं। यह जो शरीर रूपी पाञ्चभौतिक आवरण है, जबतक हम इससे अलग नहीं होते, तबतक उस दिव्य भावराज्यमें प्रवेश हो ही कैसे सकता है?

* * * * *

प्रवचन-परित्याग : मौन-व्रत

बाबूजी अपने सम्पादकीय विभागके साथ रतनगढ़में निवास कर रहे थे, परन्तु श्रीसेठजीके विशेष अनुरोधपर उन्हें चूरू जाना पड़ता था। रतनगढ़के समीप चूरू राजस्थानका एक प्रमुख नगर है।

चूरूमें पूज्य श्रीसेठजीने एक ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रमकी स्थापना कर रखी है, जहाँ प्राचीन गुरुकुल पद्धतिसे ब्रह्मचारियोंको शिक्षा दी जाती है। प्रतिवर्ष ऋषिकुलमें वार्षिकोत्सव मनाया जाता है। इस उत्सवमें बाबूजीकी उपस्थितिसे उल्लास छा जाया करता था। बाबूजीके साथ बाबा तो उत्सवमें आते ही थे, सम्पादकीय विभागके प्रमुख व्यक्ति भी उपस्थित रहा करते थे। ऋषिकुलके ब्रह्मचारियोंको प्रबोध प्रदान करनेके लिये सभी समागत संतों-विद्वानोंसे भाषण देनेके लिये अनुरोध किया जाता था। बाबासे तो विशेष रूपसे अनुरोध किया जाता था।

बाबाकी वाणीमें बड़ा ओज था और उनके वक्तव्यमें लोगोंको प्रभावित करनेकी अनोखी क्षमता थी। विषयकी प्रतिपादन शैली इतनी प्रभावोत्पादक होती थी कि श्रोताका चिन्तन-प्रवाह प्रवचनमें प्रतिपाद्यके अनुसार बह चलता था। बाबाके प्रवचनोंमें सिद्धान्तोंका विवेचन और उदाहरण द्वारा स्पष्टीकरण इतना सुन्दर होता था कि उसकी स्थायी छाप

श्रोताके मनपर पड़ती थी। उन आकर्षणपूर्ण प्रवचनोंको सुन करके लोग भक्तिभावपूर्ण जीवनके सपने देखने लगते थे। उन प्रवचनोंसे प्रेरणा प्राप्त करके न जाने कितने लोगोंका जीवन साधन-परायण हो गया। यही कारण था कि बाबाके प्रवचनोंमें बड़ी भीड़ हुआ करती थी। पंडालमें ऋषिकुलके ब्रह्मचारी तो रहते ही थे, नगरके अनेक सम्भ्रान्त लोग तथा राजकीय अधिकारीगण भी प्रवचन सुननेके लिये अवश्य आते थे। समाजके केवल प्रबुद्ध वर्गके व्यक्ति ही नहीं, साधारण स्तरके लोग भी बहुत बड़ी संख्यामें आया करते थे। पंडाल एकदम भरा रहता था, इसके बाद भी सर्वत्र बड़ी शान्ति रहा करती थी। ऐसा लगता था मानो सभी मन्त्र-मुग्ध हों।

समाजमें आध्यात्मिक भावोंके जागरणकी दृष्टिसे इन प्रवचनोंके द्वारा एक महान कार्य हो रहा था, परन्तु ऐसा लगता है कि इस महान कार्यसे भी अति विशिष्ट किसी महान आदर्शकी प्रतिष्ठाका कार्य ईश्वरीय योजनाको अभीष्ट था, तभी तो बाबूजीने एक बार बाबासे एक बड़ी ऐकान्तिक एवं मार्मिक बात कही। सम्भवतः सन् १९४१ ई. की बात है। एक दिन बाबा प्रवचन देनेके लिये जब जाने लगे तो उचित अवसर देखकर बाबूजीने बाबासे कहा – आप तो आये थे किसी और कामके लिये, पर आप लग गये धर्म-प्रचार और लोक-सुधारके कार्यमें।

बाबाने कहा – मैं आपके कथनका आशय नहीं समझ पाया। आप क्या कहना चाहते हैं?

बाबूजीने कहा – मैं क्या बताऊँ कि मैं आपको किस रूपमें देखना चाहता हूँ। मेरी आन्तरिक अभिलाषा है कि आपका जीवन श्रीकृष्णानुरागिणी व्रजांगनाओंके दिव्य प्रेमका साकार स्वरूप बन जाय। श्रीमद्भागवतका एक श्लोक है –

या दोहनेऽवहनने मथनोपलेप-
प्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ।
गायन्ति चैनमुनरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो
धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः।।
(भागवत/१०/४४/१५)

मैं तो चाहता हूँ कि इस श्लोकका सत्य आपके जीवनमें चरितार्थ हो उठे। आपको धर्मोपदेशक बनना है या प्रेम-सिन्धुमें निमज्जन करना है? श्रीकृष्णप्रेमसे परिपूर्ण उस दिव्य जीवनका महत्त्व कुछ अद्भुत ही है।

प्रवचन देनेसे बहुतोंको लाभ होगा और आपकी प्रतिष्ठा भी बहुत होगी, परन्तु इस प्रकारकी बहिर्मुखतासे उस दिव्य जीवनकी प्राप्तिमें बहुत अधिक विलम्ब हो जायेगा।

बाबूजीके ये शब्द बाबाके मर्मको स्पर्श कर गये। बाबाने पूछा – आप कहें तो मैं अभी मौन हो जाऊँ?

बाबूजीने कहा – आज तो आप प्रवचन दे आयें। पंडालमें लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। नगरके लोग श्रद्धा-भाव लेकर सुननेके लिये आये हैं। इसके बाद आप इस प्रवृत्तिसे निवृत्त हो जायें।

बाबूजीका तनिक-सा संकेत पर्याप्त था। बाबा पंडालमें गये और उस दिन उनका 'अन्तिम' प्रवचन था। अन्तिम प्रवचन होनेसे वह और भी विचारोत्तेजक एवं भावोद्दीपक था। प्रवचन देकर बाबा मौन हो गये। उसी प्रवचनमें बाबाने कह भी दिया कि यह मेरा अन्तिम प्रवचन है। यह सुनते ही सबकी भावनाएँ बड़ी व्यथित हुईं, परन्तु अब तो बाबाकी जीवन धारामें एक मोड़ आ चुका था। अब बाबाको रस-सिन्धुमें निमज्जन करना था। पूज्य श्रीसेठजीने इस निर्णयमें शिथिलता लानेके लिये कई बार कहा, परन्तु सागरोन्मुखी सरिताके प्रवाहको लक्ष्यसे विमुख अथवा पथसे विरत कौन कर पाया है? बाबाके जीवनकी यह एक प्रमुख विशेषता थी कि जिसको पकड़ा, उसको सदाके लिये पकड़ लिया और जिसको छोड़ा, उसको सदाके लिये छोड़ दिया। छोड़ा हुआ बाबाके स्मृति-क्षेत्रसे ही दूर हो जाता था। पूज्य श्रीसेठजीके अतिरिक्त अन्य कई बन्धुओंने भी लोक-हितकी भावनासे प्रवचन देनेके लिये अनुरोध किया, परंतु उन बन्धुओंको भला क्या पता कि बाबाका जीवन अब किस संकेतसे परिचालित है। यह बात बतलाने योग्य थी भी नहीं। अब तो उस संकेतके साँचे में जीवनको चुपचाप ढाल देना था।

कुछ स्वजनोंका ऐसा कथन है कि बाबूजीने मौन हो जानेका संकेत चूरूमें नहीं, रतनगढ़में दिया था। कुछ लोगोंका ऐसा भी कहना है कि स्वर्गाश्रममें संकेत दिया गया था। जो भी हो, बाबाको संकेत बाबूजीसे प्राप्त हुआ था और संकेत मिलते ही बाबा मौन हो गये। मौन व्रत लेनेके बाद बाबा अपने पास स्लेट और पेंसिल रखा करते थे। यदि कभी किसीसे कुछ कहना होता था तो स्लेटपर लिखकर बात किया करते थे। लिखकर बात करनेमें भी बाबा संयम रखते थे कि जहाँ तक